17. शासन के चार रूप

1. *If a wholly Great One rules*
   the people hardly know that he exists.
   Lesser men are loved and praised,
   still lesser ones are feared,
   still lesser ones are despised.

2. *How thoughtful one must be in what one says!*
   The work done, business takes its course,
   and all people think:
   'We are free.'

अनुवाद

1. *जब एक पूर्णत: महान (ताओ) का शासन होता है,*
   तब लोग उसकी सत्ता से ही अनभिज्ञ होते हैं।
   उससे कम वे हैं, जो प्रेम और प्रशंसा पाते हैं।
   उनसे भी कम वे हैं, जिनसे लोग भय रखते हैं।
   जो उनसे भी हीन हैं, लोग उनसे घृणा रखते हैं।

2. *हमारे बोलने में कितनी सावधानी होनी चाहिए?*
   काम सम्पन्न, उद्देश्य पूरा हुआ,
   और सभी लोग सोचते हैं,
   'हम स्वतंत्र हैं।'

भावार्थ—1. जब ताओ के अनुसार किसी महान उदारमना सम्राट का शासन होता है, तब लोग उसके शासन से अपरिचित रहते हैं। उनसे कम योग्यता के वे शासक हैं जो प्रजा से प्रेम और प्रशंसा पाते हैं। उनसे कम योग्यता के वे हैं जिनसे लोग डर मानते हैं। और उनसे नीचे स्तर के वे शासक हैं जिनसे लोग घृणा करते हैं।

2. हमें अपने बोलने में कितना सावधान रहना चाहिए, यह गंभीरता से सोचने योग्य है। जब कोई कार्य संपन्न हो जाता है तब वह उद्देश्य पूरा हो जाता है। ऐसी स्थिति में सभी लोग सोचते हैं कि हम स्वतंत्र हैं।

भाष्य—जब एक पूर्णतः महान (ताओ) का शासन होता है, तब लोग उसकी सत्ता से ही अनभिज्ञ होते हैं। स्वतंत्रता सुख है। हर प्राणी स्वतंत्रता चाहता है। उच्छृंखलता पर नियंत्रण आवश्यक है, क्योंकि उच्छृंखलता स्वतंत्रता नहीं, अपितु अपने और दूसरे के लिए दुखदायी है। इसलिए उसका निरोध भी प्रजा की स्वतंत्रता के लिए ही है। ग्रंथकार ने 39वें अध्याय में कहा है कि राजकुमार और सम्राट अपने को दीन, हीन और तुच्छ मानकर प्रजा की सेवा करते हैं। सम्राट स्वयं को प्रजा का स्वामी नहीं, अपितु सेवक मानता है। ऐसे विनम्र सम्राट ताओ के निकट हैं, विश्वसत्ता के शाश्वत नियम के निकट हैं। ऐसे शासक न विलासी होते हैं, न अहंकारी। वे सादे, संयमी और विनम्र होते हैं। इसलिए उनके शासन में प्रजा को पता भी नहीं चलता कि हमारे ऊपर कोई शासक है। ऐसे शासन को ग्रंथकार उत्तम शासक की व्यवस्था मानते हैं।

उनसे कम वे शासक हैं, जो प्रेम और प्रशंसा पाते हैं। ताओ से थोड़ा दूर रहने वाले सम्राट रजोगुणी होते हैं। वे भोग-विलास की आसक्ति में जीते हैं। वे अपने नाम की प्रशंसा चाहते हैं और कुछ ऐसा करते हैं जिससे प्रजा उनसे प्रेम करे और उनकी वाहवाही करे। ऐसे सम्राट भी प्रजा की अच्छी व्यवस्था करते हैं, किंतु अपने नाम की प्रशंसा चाहते हैं। आज-कल तो जब प्रदेशों में पार्टी की सत्ता बदलती है, तब रातोरात पहले वाले मुख्यमंत्री के चित्र और प्रशंसा के पट जो नगरों और सड़कों पर लगे होते हैं, उन्हें पोंछकर नये मुख्यमंत्री के चित्र और प्रशंसा-सूचक वचन उन पर लग जाते हैं।

उनसे भी कम वे हैं, जिनसे लोग भय खाते हैं। तीसरी श्रेणी के शासक वे हैं जो भोगी-विलासी तो हैं ही, अहंकारी भी हैं; और वे ऐसा काम करते हैं, जिससे उनकी कठोरता से जनता भय करती है। 'बिनु भय होय न प्रीति' तीसरी श्रेणी की बात है।

जो उनसे भी हीन हैं, लोग उनसे घृणा करते हैं। ये हैं महान कहे जाने वाले शैतान सिंकदर, चंगेज खां, तैमूर लंग, नादिर शाह, हिटलर आदि। ऐसे शासकों से लोग घृणा करते हैं।

हमारे बोलने में कितनी सावधानी होना चाहिए? एक बात से बिगड़ा काम बन जाता है और एक बात से बना काम बिगड़ जाता है। एक बात से परिवार और समाज में उत्तेजना फैलती है और एक बात से उनमें प्रेम और प्रसन्नता की लहर फैल जाती है। एक बात से आपसी विश्वास टूटता है और एक बात से विश्वास शक्तिशाली होता है। उत्तेजित होकर बोलने का अर्थ है अपने और दूसरे की शांति को भंग करना। इसलिए बहुत सावधानी से बोलना चाहिए और मितभाषी होना चाहिए। सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—

बोल तो अमोल है, जो कोइ बोलै जान।
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आन॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय॥

पहले के सम्राट सावधान रहते थे कि हम प्रजा में ऐसी प्रतिज्ञा न करें कि उसे पूरा न कर सकें और जो ताओ से हटकर हो। वे बहुत सम्हालकर बोलते थे और प्रतिज्ञा करते थे। वे ताओ के, विश्वसत्ता के नियम के अनुसार चलते थे और विचारकर बोलते थे। सभी को सम्हालकर बोलना चाहिए।

काम संपन्न, उद्देश्य पूरा हुआ और सभी लोग सोचते हैं, हम स्वतंत्र हैं। शासक द्वारा चलाया गया काम जो जनता के कल्याण के लिए है, संपन्न हो गया, तो जनता समझती है कि उद्देश्य पूरा हो गया। जनता यह नहीं जानती कि सम्राट का आगे कितना काम करना शेष है। वह सोचती है कि हम स्वतंत्र हैं।

ताओ के निकट, उत्तम विधान के साथ काम करने वाले शासक की प्रशंसा में चीन में सम्राट 'याओ' के समय में एक गीत प्रसिद्ध था। उसका इंगलिश में इस प्रकार अनुवाद है—

The sun rises and I go to work.

The sun sets and I go to rest.

I dig a well and I drink.

I plough a field and I eat.

The emperor : what does he give me?

(अर्थात प्रजा कहती है) सूर्य उगता है और मैं काम-धंधा पर जाता हूं। सूर्य डूबता है और मैं विश्राम में जाता हूं। मैं कुआं खोदता हूं और उसका जल पीता हूं। मैं खेत जोतता हूं और उससे उत्पन्न अन्न खाता हूं। सम्राट? वह मुझे क्या दे देता है?

इस प्रकार निष्काम और निर्हंकार सम्राट प्रजा को स्वतंत्र और निर्भय रखता था। यह उत्तम सम्राट और उसकी व्यवस्था की पहचान है।

---

18. ताओ के त्याग से हानि

1. *If the great* DAO *perishes*
   there will be morality and duty.
   When cleverness and knowledge arise
   great lies will flourish.
2. *When relatives fall out with one another*
   there will be filial duty and love.
   When states are in confusion
   there will be faithful servants.

अनुवाद

1. *जब महान ताओ का पतन होता है,*
   तब नैतिकता और कर्तव्य उपस्थित होते हैं।
   जब होशियारी और ज्ञान का उदय होता है,
   तब पाखंड की वृद्धि होती है।
2. *जब परिवार में टुटन बढ़ती है,*
   तब संतान कर्तव्यनिष्ठ होती है।
   जब राज्य में अव्यवस्था होती है,
   तब योग्य सेवक सामने आते हैं।

भावार्थ—1. जब विश्व-सत्ता के नियमों की गिरावट होती है, तब नैतिकता और कर्तव्य उपस्थित होते हैं। जब चतुरता और ज्ञान उत्पन्न होते हैं, तब पाखंड फैलता है।

2. जब परिवार में बिखराव होता है, तब अगली पीढ़ी के लोग कर्तव्यनिष्ठ होते हैं। जब राज्य में व्यवस्था बिगड़ती है, तब विश्वसनीय सेवक सामने आते हैं।

भाष्य—जब महान ताओ का पतन होता है, तब नैतिकता और कर्तव्य उपस्थित होते हैं। ताओ महान है। वह है विश्व-सत्ता का नियम। यहां संदर्भ है मानव की सहज सही दशा का। अपने पर संयम और दूसरों के साथ शील का

बरताव, जीवन में महान ताओ की उपस्थिति है। वस्तुतः अपने ऊपर पूर्ण नियंत्रण ही महान ताओ की उपस्थिति है। यह हो जाने से दूसरे के साथ सही बरताव उसका फल है। यह कारण-कार्य-व्यवस्था है। संयत व्यक्ति ही दूसरों के साथ अच्छा बरताव कर सकता है।

सद्‌गुणों की जीवन में सही स्थिति का अर्थ होता है कि उसका पता न चले। वे जीवन में स्वाभाविक हो जायें और इतने रचपच जायें कि उनका अलग अस्तित्व ही न लगे। स्वाभाविक स्वस्थ मनुष्य को यह आभास ही नहीं होता है कि मैं स्वस्थ हूं। स्वास्थ्य तो उसके जीवन में इतना ओतप्रोत है कि वह उससे अलग होकर दिखता ही नहीं है। स्वाभाविक वैराग्यवान से कहिए कि आप वैराग्यवान हैं, तो उसे अटपटा लगेगा। राग दुखप्रद है, इसलिए इसे वह छोड़कर रहता है और उसकी यह दशा इतनी स्वाभाविक हो गयी है कि वैराग्य उसके जीवन में रचपच गया है। इसलिए वह अपने को वैराग्यवान होने का ख्याल ही नहीं रखता है। वैराग्य तो उसका जीवन है।

जीवन में ताओ की पूर्ण उपस्थिति है जीवन में पूर्ण संयम जो सहज और स्वाभाविक हो। संत लाओत्ज़े कहते हैं कि इस महान ताओ का जब पतन हो जाता है, जीवन की सहज सद्‌गुण-स्थिति जब नहीं रह जाती है, तब जीवन में अनेक दुर्गुण उत्पन्न होते हैं; जैसे भोग-कामना, अहंकार, आपाधापी, दूसरों के साथ निर्दय व्यवहार। ऐसी स्थिति में जीवन में दुख बढ़ जाता है। तब मनुष्य में मोरलिटी और ड्यूटी, नैतिकता और कर्तव्य, सदाचार और सेवाभाव उत्पन्न होते हैं।

नीति से चलो और अपना कर्तव्य-पालन करो, यह तब कहा जाता है जब लोग अनीति से चलते हैं और अपने कर्तव्य-कर्मों से विमुख होते हैं। इसी भाव को लेकर ग्रंथकार कहते हैं कि जब महान ताओ का पतन होता है, तब नैतिकता और कर्तव्य उपस्थित होते हैं। जब जीवन में स्वाभाविक सद्‌गुण रहते हैं, तब नैतिकता और कर्तव्यनिष्ठा का उपदेश करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती।

मैं जब पहली बार सन 1964 ई0 में अपने भक्त प्रेमप्रकाश के घर कोलकाता गया, तब वे मेरे प्रवचन की रिकार्डिंग करने के लिए टेपरिकार्डर खरीद लाये। मेरी कल्याण-पथ नाम की पुस्तक तब छपी नहीं थी। उसकी पांडुलिपि साथ में थी। उसे समय-समय से पूरा पढ़कर टेप किया गया। उस समय मेरा एक लेख गृहस्थ नारियों को सीख देने के लिए पातिव्रत पर था। मैंने कहा कि इसका भी टेप कर लें। प्रेमप्रकाश जी ने कहा कि मेरी पत्नी स्वाभाविक पतिव्रता है, अतएव इसकी आवश्यकता ही नहीं है। अतएव उस लेख का टेप उन्होंने नहीं किया।

एक पुरानी घटना है। चीन के एक सज्जन ने जापान के सज्जन को एक पुस्तक दी जिसमें पारिवारिक धर्मपरायणता के चौबीस उदाहरण थे। जापान के सज्जन ने कहा कि यह तो हमारे देश के परिवार में स्वाभाविक है, जापान में इसकी कोई चर्चा ही नहीं करता है। यह तो हमारे देश के परिवारों में स्वाभाविक रचापचा है।

लोगों में स्वाभाविक सद्‌गुण विद्यमान हों और उनके जीवन में रचेपचे हों, यही उनके जीवन में महान ताओ की विद्यमानता है। हजारों वर्ष पुरानी घटना है। केकय देश पंजाब की व्यास नदी का क्षेत्र। वहां अश्वपति नामक राजा राज्य करते थे। पंचाल देश के महर्षि उद्दालक जो श्वेतकेतु के पिता और गुरु थे ही, आगे चलकर महाज्ञानी याज्ञवल्क्य के भी गुरु हुए थे। वे प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इंद्रदुम्न, जन तथा बुड़िल इन पांच जिज्ञासुओं को साथ लेकर राजा अश्वपति के पास ज्ञान प्राप्त करने के लिए गये थे। राजा ने उनकी जिज्ञासाओं का तो समाधान किया ही, उन्होंने अपनी प्रजा की उच्च स्थिति बतायी, "मेरे देश में कोई चोर नहीं है, न कोई कृपण है, न कोई मदिरा पीनेवाला है, न कोई हवन न करने वाला है, न कोई अविद्वान है, न कोई व्यभिचारी है, फिर व्यभिचारिणी कहां से हो सकती है?"[1] यह महान ताओ की विद्यमानता है।

अतएव जब महान ताओ का पतन होता है, स्वाभाविक सद्‌गुणों का लोप होता है, तब नैतिक और कर्तव्यनिष्ठा के उपदेश शुरू होते हैं। यदि जीवन स्वाभाविक सद्‌गुणों से पूर्ण रहे तो इसके उपदेश की आवश्यकता ही नहीं होगी।

जब होशियारी और ज्ञान का उदय होता है, तब पाखंड की वृद्धि होती है। जब क्लेवरनेस और नॉलेज़ अर्थात चालाकी और ज्ञान बढ़ते हैं तब 'ग्रेट लाइज़' अर्थात भयंकर झुठाई बढ़ती है, जिसका आधार बनता है पाखंड।

लोग कहते हैं कि अशिक्षित अंधविश्वासी होते हैं। इसके साथ यह भी कहना चाहिए कि शिक्षित धूर्त होते हैं। वस्तुतः न सब अशिक्षित मूर्ख होते हैं और न सब शिक्षित धूर्त होते हैं। शिक्षित-अशिक्षित दोनों में घोर अंधविश्वासी और मूर्ख होते हैं और दोनों में विवेकी तथा सत्य के पक्षधर होते हैं।

प्रजा के भौतिक और आध्यात्मिक शोषण करने वाले अधिकतम शिक्षित लोग हैं। आर्थिक शोषण भौतिक शोषण है और अंधविश्वास में डालना आध्यात्मिक शोषण है। जाति-पांति के नाम पर ऊंच-नीच की व्याख्या, भूत-प्रेत, चमत्कार, ऋद्धि-सिद्धि देने का झांसा, यह सब प्रजा के आध्यात्मिक शोषण के शोषण-तंत्र हैं।

---

1. **न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥ छांदोग्य उपनिषद् 5/11/5॥**

अशिक्षित जनता में सांप्रदायिकता नहीं के समान होती है। सांप्रदायिकता की आग लगाने वाले चालाक शिक्षित लोग होते हैं और इस लपेट में भी अशिक्षित भोली जानता ही अधिक मारी जाती है। चालाक शिक्षित हिंसा की आग लगाकर अलग हो जाते हैं। संत लाओत्ज़े कहते हैं कि जब ज्ञान, शिक्षा तथा चतुरता बढ़ती है तब झूठ, पाखंड तथा प्रवंचना की वृद्धि होती है।

जब परिवार में टुटन बढ़ती है, तब संतान कर्तव्यनिष्ठ होती है। परिवार के लोगों में जब अपने व्यक्तिगत घृणित स्वार्थ, अहंकार, अधिकार-लालसा, कामनाएं आदि बढ़ती हैं, तब उनमें बिखराव होता है। अतएव पारिवारिक दुख बढ़ जाता है। तब इससे पीड़ित होकर लोगों में कर्तव्यनिष्ठा का उदय होता है। वे सोचते हैं कि अपना स्वार्थ घटायें, दूसरों की सेवा करें। स्वयं सह लेना और दूसरों को न सहाना, अपना कर्तव्य निभाना और दूसरों के अधिकार की रक्षा करना, अपनी बातें किसी पर बलात न लादना और दूसरों की उचित बातें मान लेना, दूसरों की सेवा करना और दूसरों से कुछ न चाहना; यह सब बातें आती हैं।

यदि परिवार के लोग ताओ के साथ हैं, स्वाभाविक निष्काम, निर्मान, सेवा-परायण, संयमी हैं तो परिवार में कर्तव्यनिष्ठा के उपदेश देने की आवश्यकता ही नहीं है।

जब राज्य में अव्यवस्था होती है, तब योग्य सेवक सामने आते हैं। सब जगह की अव्यवस्था की जड़ में अहंकार, कामना, अंधा स्वार्थ, भोग-लालसा आदि हैं। जब राजा, मंत्री, अधिकारी, कर्मचारी घूसखोर, प्रजा के धन का दुरुपयोग करने वाले कर्तव्यहीन, क्रूर और उद्दंड होते हैं, तब राज्य में अव्यवस्था फैलती है। इस अव्यवस्था से जब प्रजा बहुत पीड़ित हो जाती है तब उसी में से ऐसे लोग निकलते हैं जो स्वयं त्याग, संयम और सादगी से रहते हैं और शासक तथा प्रजा के बीच में सामंजस्य स्थापित करते हैं। वे शासक और अधिकारी को कर्तव्य का बोध कराते हैं।

अंग्रेजों के शोषण और दमन से ही भारतीय जनता में हजारों देश-सेवक उदय हुए थे, जो अपने जीवन को मोमबत्ती की तरह गलाकर स्वयं देश के लिए प्रकाश-स्तंभ बने। यदि देश में सुव्यवस्था एवं स्वतंत्रता होती, तो इतने देश-सेवक पैदा ही नहीं होते।

संत लाओत्ज़े बहुत गहराई में सोचते हैं। वे कहते हैं कि राजा और प्रजा दोनों ताओ के अनुसार चलें, विश्व-सत्ता के नियमों के अनुसार चलें, जिससे कहीं अव्यवस्था हो ही नहीं। फिर इतने शासन और लेक्चरबाजी की आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी।

19. अपने सहज स्वरूप में लौटें

1. *Put away holiness, throw away knowledge*
   thus the people will profit a hundredfold.
   Put away morality, throw away duty:
   thus the people will return to filial duty and love.
   Put away skilfulness, throw away gain,
   and there will no longer be thieves and robbers.

2. *In these three things*
   beautiful appearance is not enough.
   Therefore take care that men have something to hold on to.

3. *Show simplicity, hold fast to honesty!*
   Diminish selfishness, reduce desire!
   Give up learnedness!
   Thus you shall become free of sorrows.

अनुवाद

1. *पवित्रता दूर बहाओ, ज्ञान छोड़ो;*
   इससे लोग सौ गुना लाभान्वित होंगे।
   नैतिक नियम दूर बहाओ, कर्तव्य को किनारे धरो,
   इससे लोग अपनों के प्रति कर्तव्य और प्रेम के पथ पर लौटेंगे।
   कुशलता दूर बहाओ, लाभ छोड़ो,
   इससे चोर लुटेरे नहीं रह जायेंगे।

2. *इन तीन बातों में*
   मात्र दिखावा से काम नहीं बनेगा।
   अतएव, ध्यान रखो,
   मनुष्यों के संबल के लिए कुछ आधार हो।

3. *सहज रहो, निष्ठावान होओ।*
   स्वार्थपरता घटाओ, इच्छाएं कम करो।

पांडित्य छोड़ो!
ऐसा करने से तुम दुखों से मुक्त हो जाओगे।

भावार्थ—1. पवित्रता और ज्ञान दूर फेंको, तब मनुष्य सौ गुणा लाभ उठायेंगे। नैतिक नियम और कर्तव्य को दूर करो, ऐसा करने से लोग पारिवारिक कर्तव्य और प्रेम की तरफ लौटेंगे। कुशलता दूर करो और लाभ का रास्ता छोड़ दो, फिर चोर और लुटेरे नहीं रहेंगे।

2. उपर्युक्त तीनों बातों में बाहरी सुंदर दिखावा से काम नहीं चलेगा। इसलिए, यह ध्यान रखो कि मनुष्यों को सद्मार्ग की तरफ प्रेरणा के लिए कुछ ठोस आधार हो।

3. सरल रहो, निष्ठावान रहो। व्यक्तिगत स्वार्थ कम करो और इच्छाओं पर संयम करो। पांडित्य का त्याग करो। फिर तुम दुखों से मुक्त हो जाओगे।

भाष्य—पवित्रता दूर बहाओ और ज्ञान छोड़ो, इससे लोग सौ गुणा लाभान्वित होंगे। पवित्रता और ज्ञान के उपदेश बहुत दिये जा रहे थे, परंतु उपदेश देने वाले ही विपरीत-पथगामी थे। ग्रंथकार जनता से कहते हैं कि तुम इनके उपदेशों के बोझ के नीचे क्यों पिस रहे हो? इन्हें छोड़ो, और अपने सहज सत्व को समझो। तुम स्वयं सोचो कि तुम्हें दुख क्यों है। जिनसे दुख है उन्हें छोड़ो, तो तुम्हें सैकड़ों गुणा लाभ होगा। केवल ज्ञान से काम नहीं चलेगा, अपितु मन की गंदगी दूर करना पड़ेगा।

नैतिक नियम दूर बहाओ, कर्तव्य को किनारे धरो; इससे लोग अपनों के प्रति कर्तव्य और प्रेम के पथ पर लौटेंगे। राजा और पुरोहित लोग नैतिक नियम बनाते थे और कर्तव्य के निर्देश देते थे, किंतु वे स्वयं इनके आचरण से विमुख थे। इसलिए ग्रंथकार कहते हैं कि इन दोमुखे लोगों के भ्रम में पड़कर समय व्यर्थ न करो, अपितु स्वयं सोचो कि तुम जिनके बीच में रात-दिन रहते हो, उनमें कौन-सा व्यवहार करके स्वयं सुखी रह सकते हो और उन्हें सांत्वना दे सकते हो। ज्ञान पुरोहित और राजा के कब्जे में नहीं है, अपितु जीवन में है। जो हमें चाहिए वही साथ वालों को चाहिए। अपने समान दूसरों को देखनेवाला स्वत: कर्तव्यनिष्ठ हो जाता है और प्रेम से भर जाता है। हम दूसरों से अपने लिए सहयोग और प्रेम चाहते हैं, तो यह सहज समझा जा सकता है कि हम दूसरों को सहयोग और प्रेम देकर उनसे यह सब पा सकते हैं। हमें कोई सहयोग और प्रेम न दे, तो भी हमें आपसी लोगों को सहयोग और प्रेम देना चाहिए। इससे हमारा मन शुद्ध होगा और अगले को भी अच्छी प्रेरणा मिलेगी।

कुशलता दूर बहाओ, लाभ छोड़ो, इससे चोर-लुटेरे नहीं रह जायेंगे। मनुष्य दूसरों को मूर्ख बनाकर उनसे लाभ लेने में अपनी प्रवीणता एवं कुशलता

दिखाता है, परंतु ऐसा लाभ भयंकर हानि उपस्थित करता है। स्वार्थ में अंधा मनुष्य यह तथ्य नहीं समझ पाता। धन पाने के लोभ में अपनी पटुता दिखाकर मनुष्य दूसरों का शोषण कर धन-माल इकट्ठा करता है, फिर उसको लेने के लिए समय से चोर और लुटेरे आते हैं। अनधिकृत अधिक धन संग्रह ही चोर लुटेरों को जन्म देता है। ग्रंथकार कहते हैं कि अपनी चतुराई और लाभ का लोभ अलग कर दो। सहज कमाओ-खाओ।

इन तीनों बातों में मात्र दिखावा से काम नहीं बनेगा। अतएव ध्यान रखो, मनुष्यों के संबल के लिए कुछ आधार हो। ऊपर तीन निर्देश दिये गये हैं। ग्रंथकार कहते हैं कि उक्त बातों में पवित्रता, ज्ञान, नैतिकता के कर्तव्य का मोहक दिखावा करने से काम नहीं बनेगा। नियम बनाते रहना, कर्तव्य की बात झाड़ते रहना और ज्ञान का प्रदर्शन करते रहना पर्याप्त नहीं है। मनुष्यों को हित-मार्ग में चलने के लिए कुछ ठोस आधार चाहिए। वह है त्याग, सादगी और संयम से चलना। ग्रंथकार कहते हैं कि चतुरता और लाभ छोड़कर आध्यात्मिक जीवन बनता है। आध्यात्मिक उन्नति के बिना कोई सुखी नहीं हो सकता और न दूसरों के लिए अच्छी प्रेरणा का स्रोत हो सकता है। इसके लिए संत लाओत्ज़े आगे रास्ता बताते हैं—

सहज रहो, निष्ठावान होओ। स्वार्थपरता घटाओ, इच्छाएं कम करो। पांडित्य छोड़ो। ऐसा करने से तुम दुखों से मुक्त हो जाओगे। मनुष्य का सहज स्वरूप शुद्ध चेतन है। उसमें देह ही नहीं है, फिर नाम, रूप, वर्ण, आश्रम, गुण, कर्म तथा समस्त भौतिक उपलब्धियां कहां हैं? ये सारी उपलब्धियां धुआं का धरहरा मात्र हैं जो थोड़े दिनों में उड़ जायेंगी। अतएव सारी मान्यताएं, अहंता-ममताएं छोड़कर खाली हो जाओ, और जैसा अपना सहज स्वरूप है वैसा रहो, फिर कोई दुख नहीं।

उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए तथा संबंधित मनुष्य के हित के लिए निष्ठावान रहो। याद रखो, दूसरों को सुख पहुंचाकर स्वयं सुखी हो सकते हो। व्यक्तिगत स्वार्थ को घटाकर और इच्छाओं पर नियंत्रण रखकर स्वयं तथा साथियों को सुख पहुंचा सकते हो। विद्वता बघारने से काम नहीं चलेगा, अपितु बालवत सरल रहकर पवित्र जीवन बिताने से सुखी हो सकते हो और दूसरों को सुविधा दे सकते हो।

20. ताओ के निकट कौन?

1. *Between 'definitely' and 'probably':*
what difference is there?
Between 'good' and 'evil':
what difference is there?
What men honour one must honour.
O loneliness, how long will you last?

2. *All men are so shining-bright*
as if they were going to the great sacrificial feast,
as if they were climbing up the towers in spring.
Only I am so reluctant, I have not yet been given a sign:
like an infant, yet unable to laugh;
unquiet, roving as if I had no home.
All men have abundance,
only I am as if forgotten.
I have the heart of a fool: so confused, so dark.
Man of the world are shining, alas, so shining-bright;
only I am as if turbid.
Men of the world are so clever, alas, so clever;
only I am as if locked into myself,
unquiet, alas, like the sea,
turbulent, alas, unceasingly.
All men have their purpose,
only I am futile like a beggar.
I alone am different from all men:
But I consider it worthy
to seek nourishment from the Mother.

अनुवाद

1. *'निश्चय' और 'संभव' में क्या अंतर है?*
'अच्छाई' और 'बुराई' में क्या अंतर है?

लोग जिसका सम्मान करें, उसका सम्मान करो।
ओ एकाकी! तुम कितने दिनों तक बचे रहोगे?

2. *सभी लोग चमक रहे हैं।*
मानो वे महा यज्ञ-भोज में शामिल हो रहे हों,
मानो वे वसंत ऋतु में ऊंचे भवनों पर चढ़े हों।
केवल मैं ही अनिच्छुक हूं,
जिसे अभी तक कोई संकेत नहीं मिला।
मैं, एक नवजात शिशु की भांति, जिसको अभी मुस्कान नहीं उभरी!
अस्थिर, भटकते हुए बिना आश्रय के!
सभी के पास प्रचुर है,
केवल मैं ही मानो भुला दिया गया हूं।
मूढ़ की तरह चित्त है मेरा,
अव्यवस्थित और अत्यंत उदास।
संसार के लोग चमक रहे हैं,
ओह! चमचम-चमचम!
केवल, मैं ही मानो गंदला हूं।
संसार के लोग होशियार हैं,
ओह! बहोत होशियार!
केवल मैं ही मानो अपने आप में बंद हूं,
अशांत! ओह! समुद्र जैसा,
अशांत! ओह! निरंतर!
सभी लोगों के अपने प्रयोजन हैं,
केवल मैं ही व्यर्थ हूं, भिखारी की तरह!
अकेला मैं ही भिन्न हूं, अन्य लोगों से,
किंतु आद्य माता से पोषण प्राप्त करने के लिए,
मैं इसे उत्तम मानता हूं।

भावार्थ—1. निश्चय और संभव में क्या फर्क है? अच्छाई और बुराई में क्या फर्क है? लोग जिसको आदर देते हैं, तुम भी आदर दो। हे अकेला पथिक! तू कब तक यहां स्थिर रह सकता है?

2. सभी लोग चमकते हुए दिखते हैं, मानो वे किसी महायज्ञ के भोज में जा रहे हैं, मानो वे उन्मादक वसंत ऋतु के समय उच्च भवन पर विलास के लिए चढ़े हों। केवल मैं उसकी इच्छा से रहित हूं। मानो मुझे अभी उसका निमंत्रण ही नहीं मिला हो। मैं उस नवजात शिशु की तरह हूं जिसे अभी मुस्कराना भी नहीं आता है, घुमक्कड़, भटकता हुआ, घर-द्वार रहित।

सभी के पास बहुत कुछ है। केवल मैं ही इस भीड़ में भुला दिया गया हूं। मेरा मन मूर्ख की तरह है अव्यवस्थित और उदास।

संसार के लोग चमक रहे हैं। ओह! खूब चटक-मटक। केवल मैं ही मानो मटमैला हूं। संसार के लोग बुद्धिमान हैं। ओह! बहुत बुद्धिमान। मानो मैं ही मूढ़ की तरह अपने आप में बंद हूं। अशांत। ओह! समुद्र जैसा। ओह! निरंतर अशांत।

सभी लोगों के अपने उद्देश्य हैं। केवल मैं ही भिखारी की भांति व्यर्थ हूं। केवल मैं ही अन्य लोगों से अलग हूं। किंतु मूल प्रकृति से पोषण पाने के लिए मैं इसे बहुत अच्छा मानता हूं।

भाष्य— 'निश्चय' और 'संभव' में क्या अंतर है? निश्चित पक्का होता है और संभव धुंधलका और प्रवाहित होता है। मनुष्य का अपना मूल अस्तित्व निश्चित होता है। मैं में मैं सदा रहता हूं। किंतु संभव तो उत्पन्न होने वाला होता है और उत्पन्न होनेवाला विनष्ट होता है। केंद्र निश्चित है और परिधि संभव है। आत्मा केंद्र है और मन परिधि है। आत्मा निश्चित है और मन संभव है, उत्पन्न-नष्ट होने वाला है। संभव से उदास होकर निश्चित में स्थित होना ज्ञान का व्यावहारिक स्वरूप है।

अच्छाई-बुराई में क्या अंतर है? जमीन-आसमान का अंतर है। अपने आप पर पूरा संयम रखना तथा दूसरों के साथ सुंदर व्यवहार करना अच्छाई है; और स्वयं अव्यवस्थित तथा लंपट रहना और दूसरों के साथ दुर्व्यवहार करना बुराई है। दोनों के परिणाम में भी महान अंतर है। पहला वाला परम सुखी होता है और दूसरा वाला महा दुखी। **लोग जिसका सम्मान करते हैं, तुम भी उसका सम्मान करो।** यह व्यवहार है, आस्था है। यहां घमंड करने की गुंजाइश नहीं है।

ओ एकाकी! तुम कितने दिनों तक बचे रहोगे? जीव एकाकी है, अकेला है। उसका कोई ऐसा सहायक नहीं है जो उसके अपने माने गये शरीर और भौतिक संपत्ति को उसके साथ सुरक्षित कर दे। प्राणी काल के गाल में है। उसे पापकर्म से अपना बचाव करना चाहिए। संसार की मोह-माया में उलझकर दुख के अलावा कुछ नहीं है। इसलिए मनुष्य को अपने सिर पर काल मंड़राता हुआ समझकर शाश्वत शांति पाने का पथ पकड़ना चाहिए। संत कबीर साहेब कहते हैं—

काल खड़ा शिर ऊपरे, तैं जागु बिराने मीत।
जाका घर है गैल में, सो कस सोवे निश्चिंत॥

(बीजक, साखी 102)

इसके आगे संत लाओत्ज़े व्यंग्य में लिखते हैं, **सभी लोग चमक रहे हैं, मानो वे महायज्ञ-भोज में सम्मिलित हो रहे हैं। मानो वे वसंत ऋतु में ऊंचे**

भवनों पर चढ़े हों। जब लोग किसी उत्सव या महाभोज में जाते हैं तब स्वाभाविक ही सजधज कर जाते हैं। कामोद्दीपक मानी जाने वाली वसंत ऋतु में धनियों का उच्च महल पर चढ़कर विलास भी जगत-प्रसिद्ध है। संसार के लोग चमक-दमक में हैं। मानो वे बहुत सुख लूट रहे हैं।

ग्रंथकार अपने लिए कहते हैं, **केवल मैं ही अनइच्छुक हूं जिसे अभी तक कोई संकेत नहीं मिला। मैं एक नवजात शिशु की भांति, जिसको अभी मुस्कान नहीं उभरी। अस्थिर, भटकते हुए बिना आश्रय के।** यह सब ग्रंथकार का व्यंग्यात्मक कथन है। ग्रंथकार सचमुच अनइच्छुक हैं, सांसारिक भोगों की इच्छा से हीन हैं। उन्हें अभी तक संकेत नहीं मिला है, दुनिया के राग-रंग का निमंत्रण नहीं मिला है, ऐसी बात नहीं है; अपितु उन्होंने उसे ठुकरा दिया है। उन्होंने भोगों को सारहीन ही नहीं, दुखरूप समझ लिया है। संत लाओत्ज़े शिशु की तरह अबोध नहीं हैं, किंतु शिशु की तरह सरल और प्रकृति के निकट हैं। वे आश्रयहीन भटकते हुए नहीं हैं, अपितु उन्होंने त्याग का महा आश्रय पा लिया है जिसमें शाश्वत आनंद है, परम शांति है।

सभी के पास प्रचुर है। केवल मैं ही मानो भुला दिया गया हूं। मूढ़ की तरह है चित्त मेरा, अव्यवस्थित और अत्यंत उदास। यह सब संत लाओत्ज़े का व्यंग्य है अपने ऊपर, साथ-साथ संसार के लोगों पर। **'सबके पास प्रचुर है'** सबके मन में बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाएं हैं दुनिया के भोगों और अधिकार को पाने के लिए। लोग उन सबके लिए हाथ-पैर मार रहे हैं, बेतहाशा भागा-दौड़ी कर रहे हैं। उन्हें यह नहीं याद है कि इसी तरह भागते-भागते अतृप्ति में ही काल के मुख में चले जायेंगे। वे अपने को खो रहे हैं। वे बलि के बकरे हैं। किंतु इस तथ्य से बे-भान हैं।

इस दुनिया के उत्सव में **'केवल मैं ही भुला दिया गया हूं।'** संत लाओत्ज़े भुला नहीं दिये गये हैं, अपितु वे स्वत: इस प्रपंच को भुला दिये हैं। क्योंकि यह ताओ के विरुद्ध है, आत्मिक शांति के नियम के विपरीत है। बाहरी भोगों के पीछे भागने वाला भीतर का ऐश्वर्य नहीं पा सकता जो शाश्वत है। ग्रंथकार का चित्त न मूढ़ है और न अव्यवस्थित। वे सच्चे अर्थ में प्रबुद्ध, ज्ञानी और कुशल हैं। वे अपने आप में सदा के लिए व्यवस्थित हो गये हैं। वे उदास हैं, परंतु दुनिया की झूठी चमक-दमक से; अपने जीवन के परम लक्ष्य में उदास नहीं हैं, अपितु उसको प्राप्त हैं।

संसार के लोग चमक रहे हैं, ओह चमचम-चमचम! केवल मैं ही मानो गंदला हूं। ताओ से हटकर रहने वाले, जीवन के प्राकृतिक नियमों से दूर रहने वाले उसी प्रकार चमक रहे हैं जिस प्रकार इक्का में जुता हुआ सजाधजा घोड़ा। वह ऊपर से चमकता है और भीतर पेट-पीठ सटे वर्षा, गरमी तथा ठंडी में

कोड़े खाता हुआ अविश्रांत दौड़ता है। संत लाओत्ज़े अपने पर व्यंग्य करते हैं **केवल मैं ही मानो गंदला हूं।** परंतु वे गंदले नहीं, अपितु पारदर्शी स्वच्छ जल के समान परिशुद्ध हैं।

संसार के लोग होशियार हैं। ओह, बहोत होशियार! केवल मैं ही मानो अपने आप में बंद हूं, अशांत, ओह! समुद्र जैसा अशांत! ओह! निरंतर। छल-छद्म करके, दूसरों को धोखा देकर, डरा-धमकाकर, प्रलोभन देकर, चमत्कार, अलौकिकता और सिद्धि का झांसा देकर लोगों का आर्थिक, शारीरिक और बौद्धिक शोषण करने वाले निश्चित ही अपने को बहुत बुद्धिमान मानते हैं, किंतु वे अपने नरक की तैयारी करते हैं। ऐसी बुद्धिमत्ता ही नरक है जिसमें अपनी मन-इंद्रियां पतित हों और दूसरों का शोषण हो, इसका परिणाम अधिक भयंकर नरक है।

संत लाओत्ज़े अपने आप में बंद नहीं, अपितु खुले हैं। अपने आप में बंद इस ढंग से कहे जा सकते हैं कि वे आत्मलीन हैं। अतएव घुटन में नहीं, अपितु परमानंद में हैं। वे समुद्र जैसा अशांत नहीं, अपितु गंभीर और अथाह हैं।

सभी लोगों के अपने प्रयोजन हैं, केवल मैं ही व्यर्थ हूं, भिखारी की तरह। जो लोग ताओ से हटकर, जीवन-नियम से हटकर हैं, उनके अपने प्रयोजन हैं भोग और अधिकार पाने की बेतहाशा दौड़। जो इस दौड़ से दूर हटकर आत्मलीन हैं, वे संसार के लोगों को व्यर्थ लगते हैं, भिखारी की तरह दरिद्र लगते हैं। किंतु वास्तव में उन्हीं का जीवन पूर्णरूपेण सार्थक है; और वे ही सम्राट हैं। कहीं भी रहने वाले स्त्री-पुरुष जो निष्काम, निर्मान और संयत होकर जीते हैं, वे ही धन्य हैं। सद्गुरु कबीर ने गाया है—

मन लागो मेरो यार फकीरी में॥ टेक॥
जो सुख पायो राम-भजन में, सो सुख नाहीं अमीरी में॥ 1॥
भली बुरी सबकी सुन लीजै, करि गुजरान गरीबी में॥ 2॥
प्रेमनगर में रहन हमारी, भलि बनि आई सबूरी में॥ 3॥
हाथ में कुंडी बगल में सोंटा, चारों दिशा जगीरी में॥ 4॥
आखिर में तन खाक मिलेगा, कहाँ फिरत मगरूरी में॥ 5॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिले सबूरी में॥ 6॥

अकेला मैं ही भिन्न हूं, अन्य लोगों से, किंतु आद्यमाता से पोषण प्राप्त करने के लिए, मैं इसे उत्तम मानता हूं। लाओत्ज़े जैसे संत सबसे भिन्न रहेंगे ही। प्रेयमार्ग और श्रेयमार्ग विपरीत दिशा के हैं ही। प्रिय लगने वाले संसार के भोगों में उलझने वाला अपना मानसिक नरक तो बनायेगा ही, शारीरिक तथा

व्यावहारिक नरक भी बनायेगा। इसके विपरीत है श्रेयमार्ग, जो दुनिया की नज़र में फीका है। वह है भोगों का त्याग, बाहरी भोग एवं अधिकार की इच्छा छोड़कर अंतर्मुख होने की साधना। संत लाओत्ज़े कहते हैं, **आद्यमाता से पोषण पाने के लिए मैं इसे उत्तम मानता हूं।** आद्यमाता है प्रकृति। उससे सही पोषण उसको मिलता है जो इंद्रिय-मन की घुड़दौड़ छोड़ देता है। ऋत, विश्वव्यापी नियम एवं यूनिवर्सल इटर्नल लॉ से वही पोषण पा सकता है जो भोग और अधिकार की लालसा छोड़ देता है।

कुछ विद्वान तथ्य को न समझकर लिख मारते हैं कि लाओत्ज़े इस अध्याय में अपनी असफलता का दुखद कथन करते हैं। यह दुखद कथन नहीं, अपितु व्यंग्य है। संत लाओत्ज़े अपने आप में पूर्ण आश्वस्त और पूर्ण संतुष्ट हैं। उनकी निचली दो पंक्तियों में इसका पूर्ण स्पष्टीकरण है। सद्‌गुरु कबीर ने भी व्यंग्य में कहा है—

हम तो सबकी कही, मोको कोइ न जान।
तब भी अच्छा अब भी अच्छा, जुग-जुग होउँ न आन॥
छौ दर्शन मे जो परवाना, तासु नाम बनवारी।
कहहिं कबीर सब खलक सयाना, इनमें हमहिं अनारी॥

(बीजक, साखी 183, 307)

21. ताओ की महत्ता

1. *The substance of the great Life*
completely follows DAO.
DAO brings about all things
so chaotically, so darkly.
Chaotic and dark
are its images.
Unfathomable and obscure in it
is the seed.
This seed is wholly true.
In it dwells reliability.
From ancient times to this day
we cannot make do without names
in order to view all things.
Where do I know the nature of things?
Just through them.

अनुवाद

1. *महान जीवन का सार,*
पूर्णतः ताओ का अनुगमन करता है।
ताओ सभी चीजों को अस्तित्व में लाता है,
दुर्गम और दुर्विज्ञेय ढंग से।
दुर्गम और दुर्विज्ञेय,
इसके प्रतिबिंब हैं।
अग्राह्य और अस्पष्ट बीज,
इसी में है।
बीज नितांत सत्य है।
इसी में विश्वसनीयता का वास है।
पुराने समय से आज तक,
सभी वस्तुओं को जानने के लिए,

बिना नाम के हमारा काम नहीं चलता।
वस्तुओं की प्रकृति को मैं कैसे जानूं?
उसी (ताओ) के द्वारा।

भावार्थ—1. महान जीवन का सत्य ताओ का पूरा अनुगमन करता है। विश्व-नियम सभी कार्य-पदार्थों को गूढ़ और अज्ञात तरीके से प्रकट करता है। गूढ़ और अज्ञात ताओ के प्रतिबिंब हैं। पकड़ में न आने वाला छिपा बीज इसी में है। बीज सर्वथा सत्य है। इसी में विश्वसनीयता स्थित है। पुराकाल से आज तक सभी वस्तुओं को जानने के लिए नाम के बिना हमारा काम नहीं चलता है। पदार्थों का स्वभाव कैसे जाना जाये? ताओ से।

भाष्य—महान जीवन का सार, पूर्णतः ताओ का अनुगमन करता है। महान जीवन का सार, उत्तम जीवन का सत्य है आत्मा की तरफ लौटना। सेवा करना, किंतु भोग और अधिकार न चाहना, यह आत्मा की तरफ लौटने का रास्ता है। यही ताओ का, विश्वनियम का अनुगमन करना है। अमुक देवता, अमुक भगवान तथा अमुक ईश्वर की उपासना, अमुक पूजा-पाठ, अमुक नाम और मंत्र-जप, यह सब संप्रदायगत आरंभिक उपासनाएं हैं। यदि ये अहिंसक ढंग से हैं तो इनसे कुछ-न-कुछ मन में सात्विकता आती है। परंतु पूर्ण आध्यात्मिक लाभ तब होता है जब मनुष्य भोगों और अधिकारों की लालसा सर्वथा त्यागकर हृदय को जगत-वासना से खाली कर लेता है। आत्मा के ऊपर जितना बोझ है वह जगत-वासना का है। उसके पूरा उतर जाने पर मनुष्य को पूर्ण शांति मिलती है। अतएव जगत-वासना का त्याग करना ताओ का अनुगमन करना एवं आदर करना है।

ताओ सभी चीजों को अस्तित्व में लाता है दुर्गम और दुर्विज्ञेय ढंग से। ताओ विश्व-सत्ता का नियम है। वह भौतिक-जगत में व्याप्त है और प्राणि-जगत में भी। प्रकृति कारण है और उससे निर्मित कार्य-पदार्थ हैं। मूल जड़-प्रकृति से दृश्यमान सारे कार्य-पदार्थ बनते हैं। ये जिन नियमों से बनते हैं वह नियम ताओ है। हीरे-सोने, लोहा-पत्थर, पेड़-पौधे, फूल-फल, नाना प्राणियों की देहें, यह सब कैसे बन जाता है, सब-का-सब समझ पाना असंभव है। इसीलिए ग्रंथकार कहते हैं कि ताओ सभी वस्तुओं को अस्तित्व में लाता है, किंतु दुर्गम और दुर्विज्ञेय ढंग से। कारण-कार्य के सारे नियम समझ पाना दुर्गम है, इसलिए दुर्विज्ञेय है, जानना कठिन है।

दुर्गम और दुर्विज्ञेय इसके प्रतिबिंब हैं। ताओ की छाया है उसकी दुरूहता। यह जो अदृश्य नियमों से सब पदार्थ बनते हैं, वह नियम ताओ की छाया है।

अग्राह्य और अस्पष्ट बीज इसी में है। ताओ में, विश्व-नियम में ही पकड़ में न आने वाला और धुंधुला जगत-कार्यों का बीज है। **बीज नितांत सत्य है। इसी में विश्वसनीयता का वास है।** बीज सर्वथा सत्य है, तभी तो मूल प्रकृति से यह जगत-प्रपंच निरंतर गतिशील है और इसमें असंख्य कार्य-पदार्थ बनते और पुन: अपनी मूल प्रकृति में समाते रहते हैं। इस तथ्य से ही यह विश्वसनीय है। इसके लिए कोई अलग से व्यक्ति-ईश्वर की कल्पना नहीं करना है। जेम्स लेगी लिखते हैं "Lao-ze has no idea of 'personality' in the Tao." अर्थात लाओत्ज़े के मन में ताओ के प्रति व्यक्तित्व की कल्पना नहीं है। ताओ को कोई व्यक्ति-ईश्वर के रूप में मानने की भूल न करे। वह केवल नियम है।

पुराने समय से आज तक सभी वस्तुओं को जानने के लिए बिना नाम के हमारा काम नहीं चलता। मनुष्य के परिचय में जो आया, वह चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म, उसने सबके नाम रखे; क्योंकि नाम के आधार पर उन्हें जाना और जनाया जाता है। नाम रखे बिना काम नहीं चलता। इसी कारण प्रकृति के नियमों के समुच्चय का नाम ताओ रखा गया।

वस्तुओं की प्रकृति को मैं कैसे जानूं? उसी (ताओ) के द्वारा। नियमों से ही हम वस्तुओं की प्रकृति को जान सकते हैं। गरमी से आग को, शीतलता से जल को जैसे जाना जाता है वैसे सभी वस्तुओं को उनके नियमों से ही जाना जाता है। जड़-चेतनमय जगत को जानने के लिए हमें जड़-चेतन के मूल स्वरूप का अध्ययन करना चाहिए। इनसे हटकर काल्पनिक ईश्वर का नहीं।

22. निष्कामता और निर्मानता ही ताओ का अनुगमन है

1. *What is half shall become whole.*
   What is crooked shall become straight.
   What is empty shall become full.
   What is old shall become new.
   Whosoever has little shall receive.
   Whosoever has much, from him shall be taken away.

2. *Thus also is the Man of Calling:*
   he encompasses the One
   and sets an example to the world.
   He does not want to shine,
   therefore will he be enlightened.
   He does not want to be anything for himself,
   therefore he becomes resplendent.
   He does not lay claim to glory,
   therefore he accomplishes works.
   He does not seek excellence,
   therefore he will be exalted.
   Because whosoever does not quarrel
   with him no-one in the world can quarrel.
   What the ancients said: 'That which
   is half shall become full,'
   is truly not an empty phrase.
   All true completeness is summed up in it.

अनुवाद

1. *जो अधूरा है, वह पूर्ण होगा।*
   जो गांठदार है, वह सीधा होगा।

जो रिक्त है, वह भर जायेगा।
जो जीर्ण-शीर्ण है, वह नवीन होगा।
जिसके थोड़ा है, उसे मिलेगा।
जिसके अधिक है, उससे ले लिया जायेगा।

2. *संत की रहनी इस प्रकार होती है—*
वे 'एक' को अपने में समाहित कर लेते हैं,
और संसार के लिए उदाहरण बनते हैं।
वे चमकने की इच्छा नहीं रखते,
अतएव वे बोध को उपलब्ध होते हैं।
वे अपने लिए कुछ चाहते नहीं,
अतएव, उनकी चमक बढ़ती है।
वे ऐश्वर्य की इच्छा नहीं रखते,
अतएव, वे कार्य सिद्ध करते हैं।
वे श्रेष्ठता नहीं चाहते,
अतएव, वे ऊपर उठते हैं।
जो किसी से कलह नहीं करता,
उससे संसार में कोई कलह नहीं कर सकता।
पुराने लोगों ने जो कहा है, 'जो अधूरा है वह पूर्ण हो जायेगा',
यह सचमुच कहावत मात्र नहीं है।
सारी समग्रता इसी में समायी हुई है।

भावार्थ—1. अधूरा पूर्ण होता है, गांठदार सीधा होता है, खाली भरता है, जरजर नया होता है, कम पूर्ण होता है और अधिक वाले का घट जाता है।

2. संत के आचरण इस प्रकार होते हैं—वे ताओ को अपने में समा लेते हैं। इसलिए संसार के लोगों के लिए उदाहरण बन जाते हैं। वे अपना प्रदर्शन नहीं करना चाहते, इसलिए वे आत्मबोध में संतुष्ट होते हैं। वे अपने लिए कोई इच्छा नहीं रखते, इसलिए वे संसार में ज्योतित होते हैं। वे ऐश्वर्य की इच्छा नहीं रखते, इसलिए वे अपने उद्देश्य में सफल होते हैं। वे श्रेष्ठता नहीं चाहते, इसलिए ऊंचे उठ जाते हैं। जो किसी से विवाद नहीं करता, उससे कोई विवाद नहीं कर सकता। पहले के लोगों ने जो ऐसा कहा है, 'अधूरा पूर्ण होगा' वह केवल कहावत नहीं है। सारी पूर्णता इसी में समायी है।

भाष्य—जो अधूरा है वह पूर्ण होगा। अधूरा है असंतोष। वह संतोष से पूर्ण होता है। संसार का अधूरा कभी पूर्ण नहीं होता। उसमें पूर्ण होने का भ्रम होता है। मनुष्य सोचता है कि अमुक काम हो जाये, तो पूरा हो जायेगा। परंतु

उसके हो जाने के बाद अन्य काम सामने आ जाते हैं। एक इच्छा पूर्ण होने पर कई इच्छाएं उठ खड़ी होती हैं। आज तक किसी का काम पूरा नहीं हुआ है। सब लोग अपूर्णता में ही मर जाते हैं। पूरा उसी का होता है जिसको यथाप्राप्ति में संतोष है।

जो गांठदार है, वह सीधा होगा। मन की ग्रंथियां (कॉम्पलेक्सस्)—काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, वैर आदि मानसिक विकार गांठें हैं। ये ही मनुष्यों को निरंतर चुभती और दुख देती हैं। परंतु अबोध-वश मनुष्य इन्हें प्रिय माने रहता है और इन्हीं में उलझकर नरक भोगता है। जो विवेकवान इन्हें दुखद रूप में देख लेता है जैसे कि वे वस्तुत: हैं, वह इन्हें तोड़कर सीधा एवं सरल हो जाता है। मन की मलिनता जीवन की गांठें हैं। इनसे पूरा मुक्त हो जाना जीवन का सीधा सपाट हो जाना है।

जो रिक्त है, वह भर जायेगा। रिक्तता, खालीपन, सूनापन सांसारिक इच्छाओं के कारण है। चाहने वाले को सदैव रिक्तता का बोध होता है। जो इच्छाओं से भरा है, उसके मन में सब समय सूनापन लगता है। रिक्तता, खालीपन, सूनापन, निराशा, खिन्नता, मानसिक पीड़ा इच्छाओं की देन हैं। जो जितना इच्छाओं से भरा होगा वह उतना ही अपने को रिक्त, खाली एवं दरिद्र पायेगा। आत्मबोध द्वारा जब वह सारी इच्छाओं का त्याग कर देगा, तब उसकी रिक्तता भर जायेगी।

जो रिक्त है, वह भर जायेगा। इसे इस ढंग से भी समझा जा सकता है कि जो अपने मन को खाली कर लेता है, सांसारिक वासनाओं एवं कामनाओं से शून्य कर लेता है, वह भर जाता है। सारी अहंता-ममता, वासना-कामना त्यागकर जिसने अपने मन को रिक्त कर लिया, शून्य कर लिया, वह भर गया, तृप्त हो गया।

जो जीर्ण-शीर्ण है, वह नवीन होगा। सबके शरीर निरंतर बदलते हैं। बदलाव हर अवस्था में है, परंतु जीर्णता जवानी के बाद आ जाती है और शरीर निरंतर गलता जाता है। गुरु-उपदेश से जब मनुष्य को बोध होता है कि मैं देह नहीं हूं अजर-अमर आत्मा हूं, और इस बोध में जब उसकी निरंतर स्थिति हो जाती है, तब वह मानो नया हो जाता है, वह वस्तुत: नया नहीं है। आत्मा पुरातन एवं शाश्वत है, किंतु उसका बोध तो नया ही है। आज तक नहीं जानता था कि मैं सड़ने वाली देह नहीं, किंतु अजर-अमर आत्मा हूं। आज जाना, तो नवीन हो गया। आत्मज्ञानी एवं स्वरूपलीन व्यक्ति निरंतर तरोताजा रहता है।

जिसके थोड़ा है, उसे मिलेगा। थोड़े का अनुभव थोड़ापन लाता है। ज्ञान हो जाने पर थोड़ेपन का अनुभव ही नहीं होता है। अतएव लगता है कि सबकुछ मिल गया। ये सारी बातें ताओ की तरफ चलने से होती हैं। जो ताओ,

विश्वनियम को पहचानकर उसके अनुसार चलता है, उसका सब प्रकार से मंगल होता है। वह सब प्रकार से पूर्ण हो जाता है।

जिसके अधिक है, उससे ले लिया जायेगा। यह प्रकृति का नियम है कि हर निर्मित कार्य-पदार्थ अपने मूल कारण में पुन: लौट जाता है। इसी प्रकार जिसके पास अधिक संग्रह है, थोड़े दिनों में वह बिखर जाता है। आज तक किसी का संग्रह नहीं रह गया। किसी ने कितना अच्छा कहा है—

काहे गरब करे नर मूरख, यह सब दुनिया फानी है।
बिनसि जाय सपने की माया, ज्यों अंजुली का पानी है॥

इसलिए, संत की रहनी इस प्रकार होती है; **वे 'एक' को अपने में समाहित कर लेते हैं और संसार के लिए उदाहरण बनते हैं।** यह 'एक' है ताओ, ऋत, नियम, जीवन जीने का उत्तम प्राकृतिक नियम। संत संयम और शील से जीते हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र का ताओ संयम और शील है, अपने आप पर संयम और दूसरे सब के साथ शील का भाव तथा व्यवहार। संत अपने संयम और शील के व्यवहार से दूसरों के लिए उदाहरण बनते हैं, प्रेरणा-स्रोत होते हैं।

वे चमकने की इच्छा नहीं रखते, अतएव बोध को उपलब्ध होते हैं। अपने नाम-रूप, गुण-कर्म तथा लौकिक उपलब्धियों का लोगों में प्रदर्शन कर अपने आप को योग्यतम सिद्ध करने की इच्छा अपने को चमकाना है। संत ऐसा नहीं करते। "सब ऐश्वर्य नास्ति के माहीं। जाके पीछे जिव बौराहीं॥" वे समझते हैं कि जो वस्तुएं लोगों को दिखाई जा सकें, वे अपनी हैं ही नहीं। उनके बल पर मेरा आत्म-प्रदर्शन हो ही नहीं सकता। जब शरीर ही मेरा नहीं है, तब क्या लेकर मैं अपना प्रदर्शन करूं।

अतएव वह बोध को प्राप्त होता है। वह स्वरूपबोध में जीता है। 'मैं' के रूप में जो ज्ञान-सत्ता है, उसके नाम जीव, आत्मा, सोल, रूह, ब्रह्म कुछ भी रखें, वही मनुष्य का सार स्वरूप है। उसके ऊपर पड़ी पपड़ी देह और देहजनित सारी मान्यताओं का कूड़ा-कचड़ा हटा देने पर, वह स्वयं शेष रह जाता है, जो परम है। ऐसा स्वरूपबोध में जीने वाला मनुष्य दिखावा में नहीं पड़ता।

वे अपने लिए कुछ चाहते नहीं, अतएव उनकी चमक बढ़ती है। जो अपने लिए कुछ नहीं चाहता है वह सम्राट हो जाता है। संत कबीर साहेब की भाषा में—

चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बे परवाह।
जिनको कुछ नहिं चाहिए, सो शाहन्पति शाह॥

इच्छाहीन मनुष्य परम शीतलता प्राप्त करता है। यह परम शीतलता एवं परम सुख सब जीव को इष्ट है। इच्छाहीन परम शांतात्मा की विद्यमानता

परमार्थ-प्रेमियों को आकर्षित करती है। सारी असली चमक निष्कामता में है। निष्काम मनुष्य स्वाभाविक चमक उठते हैं। उनसे लोग सत्प्रेरणा लेते हैं।

वे ऐश्वर्य की इच्छा नहीं रखते, अतएव वे कार्य सिद्ध करते हैं। मनुष्य का मुख्य कार्य क्या है, जिसके करने से उसे परम शांति मिले। इच्छा-शून्य हो जाना। यह काम वह नहीं कर सकता जो लौकिक ऐश्वर्य की कामना वाला है। ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला तो रात-दिन मानसिक ताप में जलता है। इच्छाहीन व्यक्ति महल, झोपड़ी और पेड़ के नीचे समान भाव से सुख से सोता है। धन, पद, अधिकार और ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाला महान दरिद्र है। उसको अपने जीवन का परम लक्ष्य कभी प्राप्त नहीं हो सकता। विवेकवान तो वह है कि धन, पद, ऐश्वर्य उसके पीछे भले चलें, किंतु जो इनके पीछे नहीं चलता। इसलिए वह अपने जीवन का परम लक्ष्य शाश्वत शांति प्राप्त करता है।

वे श्रेष्ठता नहीं चाहते, अतएव वे ऊपर उठते हैं। लोग बड़ा बनने के लिए, अपनी श्रेष्ठता बताने के चक्कर में रहते हैं। विवेकवान लोगों के बीच में अपनी श्रेष्ठता चाहते ही नहीं। जो अपने को नीचे रखता है वह स्वाभाविक ऊपर उठ जाता है। जो ऊपर जाना चाहता है वह नीचे गिरता है। सिकंदर विश्वविजय की इच्छा में हारकर थोड़े दिनों में मर गया। हिटलर की यही दशा हुई। श्रेष्ठता लघुता में है। लघुता लेने वाला बड़ा होता है।

जो किसी से कलह नहीं करता, उससे संसार में कोई कलह नहीं कर सकता। कुछ पाने के लिए कलह किया जाता है। धन, पद, मान, बड़ाई, अपनी बात की ऊंचाई आदि किसी बात के लिए कलह किया जाता है। सारी इच्छाओं से रहित व्यक्ति के जीवन में कलह रह ही नहीं जाता है। न उसे किसी से बड़ा बनना है और न कुछ पाना है, तब उसका किसी से कलह, विवाद एवं झगड़ा करने का कोई कारण ही नहीं है। ऐसे इच्छाहीन तथा कलह-रहित प्रशांत मनुष्य से कोई कलह नहीं कर सकता। कोई उसका अपमान कर सकता है, उसे गाली दे सकता है, उसका कुछ छीन सकता है, परंतु वह तो प्रशांत है, तो दूसरे का कलह अपने आप गिर जाता है। कबीर साहेब की भाषा में "बिजली परै समुद्र में, कहा सकेगी जारि।" यदि समुद्र में बिजली गिरे, तो वह समुद्र का क्या जला सकती है? संत पलटू साहेब ने कहा है—

पलटू हमसे लड़न को, आवै सब संसार।
वे बोले मैं चुप रहूँ, सहजै जावैं हार॥

निष्काम संत पहले से हार कर बैठे हैं। अब उनको कोई क्या हरा सकता है? जीतने की इच्छा रखने वाले को हराया जा सकता है, और जो पहले से सबसे हार मान लिया है, उसको कोई क्या हरा सकता है! जीतने की इच्छा

वाला दरिद्र है और सारे संसार से हार मान लेने वाला महा धनी है। उससे कोई कलह नहीं कर सकता।

पुराने लोगों ने जो कहा है, जो अधूरा है वह पूर्ण हो जायेगा; यह सचमुच कहावत मात्र नहीं है। सारी समग्रता इसी में समायी हुई है। अधूरा पूर्ण होता है इच्छा-त्याग से, जो ताओ का राजमार्ग है। जगत-कामना ही अधूरापन दर्शाती है। उसके पूर्णतया त्याग हो जाने पर पूरा हो जाता है। आज तक किसी राजा-महाराजा तथा सम्राट का अधूरापन नहीं मिटा है। भोग और अधिकार के पीछे भागनेवाले मनुष्यों का अधूरापन कब समाप्त होने वाला है? अधूरापन, अभाव, असंतोष का अंत इच्छा-त्याग में है। यही ताओ का पथ है। मनुष्य-जीवन की सारी समग्रता उसके निर्मान और निष्काम होने में समायी है। इस स्थिति में ही दुखों का अंत है और परम सुख-शांति है।

स्व-स्वरूपबोध न होने से मनुष्य बाहरी झूठी चमक-दमक से अपने को भरना चाहता है जो उत्तरोत्तर तृष्णा बढ़ाकर दुख में डुबाने वाला है। भोग से पूर्णता नहीं मिलती, अपितु त्याग से मिलती है। जब यह बोध हो जाता है कि मैं स्वयं पूर्ण हूं और इसके परिणाम में सारी सांसारिक कामनाएं छूट जाती हैं, तब मनुष्य स्वयं अगाध अमृत सागर हो जाता है। यही पूर्णता है।

23. अल्पभाषी और उद्वेगशून्य बनें

1. *Use words sparingly,*
   then all things will fall into place.
   A whirlwind does not last a whole morning.
   A downpour of rain does not last a whole day.
   And who works these?
   Heaven and Earth.
   What Heaven and Earth cannot do enduringly:
   how much less can man do it?

2. *Therefore if you set about your work with DAO*
   you will be at one in DAO with those who have DAO,
   at one in Life with those who have Life,
   at one in poverty with those who are poor.

3. *If you are at one with them in DAO*
   those who have DAO will come to meet you joyfully.
   If you are at one with them in Life
   those who have Life will come to meet you joyfully.
   If you are at one with them in poverty
   those who are poor will come to meet you joyfully.
   But where faith is not strong enough
   there one is not believed.

अनुवाद

1. *अल्प भाषी बनो,*
   फिर सब कुछ अपनी जगह पर ठीक हो जायेगा।
   वायु का तीव्र वेग पूरी सुबह नहीं बना रहता।
   वर्षा की तीव्रता पूरे दिन नहीं बनी रहती।
   और इन्हें कौन चलाता है?
   स्वर्ग और पृथ्वी।

जब स्वर्ग और पृथ्वी द्वारा किया गया देर तक नहीं टिकता,
तब आदमी इसको कितना कम कर सकता है?

2. *अतएव,*
जब आप ताओ के सहयोग से अपना कार्य प्रारंभ करते हैं,
तब आप ताओ में (और) उनमें एकरस होते हैं,
जो ताओ को उपलब्ध हैं,
'जीवन' में (और) उनमें एकरस होते हैं,
जो जीवन को उपलब्ध हैं,
गरीबी में उनसे एकरस होते हैं,
जो गरीब हैं।

3. *जब आप ताओ में एकरस होते हैं,*
तब जो ताओ को उपलब्ध हैं,
वे आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं।
जब आप 'जीवन' में एकरस हैं,
तब जो 'जीवन' को उपलब्ध हैं,
आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं।
जब आप गरीबी में एकरस हैं,
तब जो गरीब हैं, वे आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं।
किंतु जो स्वयं में दृढ़ निष्ठावान नहीं है,
उस पर दूसरे भी विश्वास नहीं करेंगे।

भावार्थ—1. कम बोलो, फिर अपने स्थान पर सब कुछ व्यवस्थित हो जायेगा। रात में आया हुआ आंधी का वेग सुबह तक नहीं बना रहता है। सुबह से होने वाली वर्षा का जोर पूरे दिन नहीं बना रहता है। और इन्हें कौन उत्तेजित करता है? स्वर्ग और पृथ्वी, अर्थात प्रकृति-सत्ता। जब प्रकृति-शक्ति के द्वारा किया जाने वाला विलंब तक नहीं रहता, फिर मनुष्य अपना वेग कितना कम कर सकता है, इसे वह स्वत: सोचे।

2. इसलिए जब आप ताओ के सहारे अपना कार्य शुरू करते हैं, तब आप ताओ में तो लीन होते ही हैं, इसके साथ उनमें भी अपना तादात्म्य बनाते हैं जो लोग ताओ को उपलब्ध हैं। जब जीवन के सद्‌गुणों में आप अपना तादात्म्य करते हैं, तब आपका तादात्म्य उनसे भी होता है जो जीवन के सद्‌गुणों से संपन्न हैं। जब आप उनसे अपना तादात्म्य करते हैं, जो ताओ से रहित होने से आध्यात्मिकता में दरिद्र हैं, तब उन्हें भी अपने सुधार की आशा जगती है।

3. जब आप अपना तादात्म्य ताओ से करते हैं, तब ताओ में रमने वाले

आपसे खुश होकर मिलते हैं। जब आप जीवन के सद्‌गुणों में तादात्म्य करके रहते हैं, तो सद्‌गुण संपन्न जीवन वाले आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं। जब आप उनसे अपना तादात्म्य करते हैं जो ताओ से अनभिज्ञ होने से आध्यात्मिकता में दरिद्र हैं, तब वे आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं। परंतु जो अपने में आस्थावान नहीं है, उसे दूसरे की आस्था नहीं मिलती।

भाष्य—1. अल्पभाषी बनो, फिर सब कुछ अपनी जगह पर ठीक हो जायेगा। मनुष्य बातें बोल-बोलकर जितना व्यवहार खराब करता है, वह संसार में सामने है। यदि कम बोलने का अभ्यासी हो जाये तो बहुत संकट अपने आप कट जाये। सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—

बालू जैसी किरकिरी, ऊजल जैसी धूप।
ऐसी मीठी कुछ नहीं, जैसी मीठी चूप॥

वाणी सत्य, मिष्ट, प्रिय और हितकर बोलना चाहिए। इन सद्‌गुणों के संयुक्त होने पर भी बहुत कम बोलना चाहिए। मौन रहकर विनम्रता से सेवा करना चाहिए, फिर सब अपने आप व्यवस्थित हो जायेगा। बहुत बोलकर केवल बिगड़ता है। इसलिए कम-से-कम बोलने की आदत बनाना चाहिए। साथियों को बातों से नहीं तृप्त किया जा सकता है, किंतु विनम्रता और निष्कामता पूर्वक सेवा से संतोष दिया जा सकता है।

वायु का तीव्र वेग पूरी सुबह नहीं बना रहता। वर्षा की तीव्रता पूरे दिन नहीं बनी रहती। और इन्हें कौन चलाता है? स्वर्ग और पृथ्वी। जब स्वर्ग और पृथ्वी द्वारा किया गया देर तक नहीं टिकता, तब आदमी इसको कितना कम कर सकता है? आंधी और घोर बारिश के प्रेरक स्वर्ग और पृथ्वी हैं—आकाश और पृथ्वी में फैली विशाल प्राकृतिक शक्तियां हैं, परंतु इनके कार्य भी थोड़े समय में मंद पड़ जाते हैं और रुक जाते हैं। तो मनुष्य सोच सकता है कि उसकी कितनी शक्ति है। विशाल प्रकृति की शक्ति अनंत है, फिर भी वह थोड़ा गरज-बरसकर मौन हो जाती है; परंतु अत्यंत अल्प तथा क्षणिक शक्ति वाला मनुष्य कटुतापूर्ण वाद-विवाद कर उसे बहुत समय तक बनाये रखता है और उसका नरक भोगता है। ग्रंथकार कहते हैं कि मनुष्य इस बात को स्वयं सोचे कि वह बात का कितना संक्षिप्तीकरण कर सकता है। संत लाओत्ज़े कहते हैं कि कम बोलो, सारा काम अपने आप ठीक हो जायेगा। बस, विनम्रता से सेवा करते रहो।

अतएव आप ताओ के सहयोग से अपना कार्य आरंभ करते हैं, तब आप ताओ में और उनमें एकरस होते हैं जो ताओ को उपलब्ध हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में ताओ है वह नियम जिसके पालन से शाश्वत शांति मिलती है। वह है निष्कामता और निर्मानतापूर्वक आत्मसंयम। जब इन गुणों के सहयोग से मनुष्य

अपने जीवन की रहनी बनाने का काम आरंभ करता है, तब इन उच्च गुणों में उसकी एकात्मता होती ही है, और उनसे भी उसकी एकात्मता होती है जो इस उच्च स्थिति से संपन्न मनुष्य हैं। शांतात्मा मनुष्य अन्य शांतात्मा मनुष्यों से जुड़ जाते हैं। यही संत-समागम है।

पूर्ण ताओ से जुड़ना जीवन्मुक्ति है। जीवन्मुक्त अन्य जीवन्मुक्तों से मानो जुड़ जाता है, क्योंकि दोनों की स्थिति एक समान होती है। कबीर साहेब कहते हैं—

समुझे की गति एक है, जिन्ह समुझा सब ठौर।
कहहिं कबीर ये बीच के, बलकहिं और कि और॥

(बीजक, साखी, 190)

जीवन में और उनमें एकरस होते हैं, जो जीवन को उपलब्ध हैं। इस पुस्तक का नाम है, 'ताओ ते चिंग', ताओ है भौतिक और आध्यात्मिक नियम, ते है जीवन, अर्थात जीवन के सद्‌गुण, और चिंग है पुस्तक। पूर्ण ताओ में लीन जीवन्मुक्त मनुष्य हैं। पूर्ण निष्कामता और निर्मानता ताओ की स्थिति है। और क्षमा, दया, शील, विचार आदि सद्‌गुण ते की स्थिति है। यही मध्य का अच्छा जीवन है। ग्रंथकार कहते हैं जो लोग अपने सद्‌गुण संपन्न जीवन में एकात्म हैं, वे उनसे भी एकात्म होते हैं जो दूसरे सद्‌गुण संपन्न लोग हैं। यह साधकों और भक्तों का समागम है।

गरीबी में उनसे एकरस होते हैं जो गरीब हैं। यहां भौतिक गरीबी और गरीब की बात नहीं है। यहां वे गरीब कहे गये हैं जो ताओ के अध्ययन और आचरण से अनभिज्ञ और दूर हैं। ऐसे लोग स्वाभाविक दुखी रहेंगे। ताओ को उपलब्ध संत, अर्थात पूर्ण निष्काम और निर्मान आत्मलीन संत ऐसे लोगों से भी अपना एकात्म्य करते हैं जिससे उनको ताओ के विषय में समझाया जा सके।

जब आप ताओ में एकरस होते हैं, तब जो ताओ को उपलब्ध हैं, वे आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं। जब मनुष्य पूर्ण निष्काम और पूर्ण निर्मान होकर आत्मलीन होता है, तब इस स्थिति को प्राप्त अन्य मनुष्य उसे प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं। यह जीवन्मुक्तों का मिलन है।

जब आप जीवन में एकरस हैं, तब जो जीवन को उपलब्ध हैं, आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं। जब आप 'ते' को उपलब्ध हैं, अर्थात जीवन के सद्‌गुणों से संपन्न हैं, तो वे लोग आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलेंगे जो सद्‌गुण संपन्न हैं, 'ते' को प्राप्त हैं। यह साधकों का सम्मिलन है।

जब आप गरीबी में एकरस हैं, तब जो गरीब हैं, वे आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं। ताओ से अनभिज्ञ तथा उसके आचरण से रहित लोग गरीब हैं, परंतु

ये बुरे मनुष्य नहीं हैं। कोई संत जब ऐसे लोगों से अपना एकात्म्य करता है, तब वे लोग उसे प्रसन्नता से मिलते हैं और उनका सुधार होता है। यह संत-भक्त का मिलन है।

किंतु जो स्वयं में निष्ठावान नहीं है, उस पर दूसरे भी विश्वास नहीं करते। जो आत्मविश्वास से भरा नहीं है, उस पर दूसरे लोग कैसे विश्वास करेंगे? मनुष्य को यह विश्वास होना चाहिए कि हम 'ताओ' और 'ते' को समझकर उनके अनुसार रहनी बना सकते हैं। ताओ आत्मलीनता है और 'ते' जीवन के सद्‌गुण हैं। इसी जीवन में हम इनका आचरण करके शाश्वत शांति में विराज सकते हैं। इस आत्मनिष्ठा से ही अपना कल्याण संभव है और ऐसे बोध तथा दिव्य रहनी में चलने वाले लोग ही दूसरों का हित करने में सहयोग कर सकते हैं। ऐसे एकनिष्ठ मनुष्य में अन्य की श्रद्धा जमती है।

प्रत्यक्ष (पांचों विषयों) से सुख पाने का विश्वास करके हम अनादिकाल से धोखा खाते आ रहे हैं। इसी प्रकार परोक्ष (मन की अवधारणाओं) में विश्वास करके स्वयं को ठगाते आये हैं। जब हम इंद्रिय और मनजनित प्रत्यक्ष और परोक्ष से पूर्णतया हटकर अपरोक्ष (आत्मा) में निष्ठा करते हैं, तब अजेय हो जाते हैं। आत्मनिष्ठ मनुष्य स्वयं अनंत सुख-सागर होता ही है, अन्य मुमुक्षु का भी संबल बनता है।

24. बहिर्मुखता पतन-पथ है

1. *Whosoever stands on tiptoe*
does not stand firmly.
Whosoever stands with legs astride
will not advance.
Whosoever wants to shine
will not be enlightened.
Whosoever wants to be someone
will not become resplendent.
Whosoever glorifies himself
does not accomplish works.
Whosoever boasts of himself
will not be exalted.
For DAO he is like kitchen refuse and a festering sore.
And all the creatures loathe him.
Therefore: whosoever has DAO
does not linger with these.

अनुवाद

1. *जो भी पंजों के बल खड़ा होता है,*
वह दृढ़ता से खड़ा नहीं हो सकता।
जो पांव फैलाकर खड़ा है,
वह आगे नहीं बढ़ सकता।
जो अपने को प्रदर्शित करना चाहता है,
वह यथार्थ बोध से दूर रहता है।
जो कुछ और होना चाहता है,
वह महान नहीं हो सकता।
जो अपने को ऐश्वर्य से जोड़कर देखता है,
उसका कार्य सिद्ध नहीं होता।
जो अपनी डींग हांकता है,

वह ऊंचा नहीं हो सकता।
ताओ की दृष्टि में,
वह बासी भोजन और मवादयुक्त फोड़ा सदृश है,
और सभी प्राणी उससे घृणा करते हैं।
अतएव,
ताओ को उपलब्ध मनुष्य,
इन सबके साथ नहीं चिपकता।

भावार्थ—1. पैर की अंगुलियों के बल पर जो भी मनुष्य खड़ा होना चाहेगा वह मजबूती से खड़ा नहीं हो सकता। जो मनुष्य एक पैर बहुत आगे और दूसरा पैर बहुत पीछे तानकर खड़ा होगा, वह चल नहीं सकता और आगे बढ़ नहीं सकता। जो मनुष्य अपने को दिखाना चाहता है, वह सत्य ज्ञान से दूर रहेगा। जो अपनी सच्चाई से हटकर कुछ और होना चाहता है, वह महान नहीं हो सकता। जो स्वयं को सांसारिक ऐश्वर्य से जोड़कर देखता है, उसका कार्य सिद्ध नहीं होगा। जो अपनी बढ़-बढ़कर बड़ाई करता है, वह उच्च स्थिति को नहीं पा सकता।

उपर्युक्त लक्षणों के मनुष्य ताओ के अनुसार सड़े भोजन और मवाद भरे फोड़े के समान हैं। ऐसे लोगों से सभी मनुष्य घृणा करते हैं। इसलिए जो मनुष्य ताओ के अनुसार चलता है, उपर्युक्त बुराइयों में नहीं रहता।

भाष्य—जो पंजों के बल खड़ा होता है, वह दृढ़ता से खड़ा नहीं हो सकता। पैर की अंगुलियां पैर के पंजे हैं। उसी के बल पर जो खड़ा होना चाहेगा, वह मजबूती से नहीं खड़ा हो सकता। पंजों के बल पर खड़ा होने का अर्थ है अपने को बड़ा दिखाने की चेष्टा करना, जो हीन-भावना का लक्षण है। अहंकारी मनुष्य अपनी दुर्बलता छिपाने के लिए अपने को बड़ा दिखाना चाहता है। इसका परिणाम होता है उसका पतन। अपनी शक्ति को समझे बिना केवल उत्साह के बल पर बड़े-बड़े कार्य करने की बात ठान लेना अपनी हंसी करवाना है। गृहस्थ ही नहीं, ऐसे महात्मा वेषधारी भी होते हैं जो किसी की समृद्ध संस्था देखकर उसी तरह या उससे बढ़कर संस्था स्थापित करने का बीड़ा उठा लेते हैं और कुछ भावुक मनुष्यों को बटोरकर संस्था का गठन भी कर लेते हैं। परंतु उनकी पूरी संस्था उनके झोले में रह जाती है, जमीन पर कभी नहीं उतरती।

जो पांव फैलाकर खड़ा है, वह आगे नहीं बढ़ सकता। एक पैर बहुत आगे और दूसरा पैर बहुत पीछे तानकर न खड़ा रहा जा सकता है और न चला जा सकता है। यदि जानकारी बहुत अधिक है और आचरण शून्य है, तो वह स्वयं भीतर से गिरा होगा। ऐसी स्थिति में दूसरे को वह क्या दे सकेगा? दोनों पैरों को समान भाव से उठाकर चलते रहने से गंतव्य पर पहुंचा जा सकता है।

इसी प्रकार ज्ञान और उसका आचरण समान भाव से चलते रहने पर आत्मशांति मिलती है और ऐसे कथनी-करनी के ऐक्य मनुष्य से अन्य को भी सत्प्रेरणा मिलती है।

जो अपने को प्रदर्शित करना चाहता है, वह यथार्थ-बोध से दूर रहता है। जो मनुष्य अपने को लोगों में दिखाना चाहता है कि मैं कुछ हूं, उसे यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। दुनिया की बड़ी-बड़ी चमक थोड़े दिनों में बुझ जाती है; और पीछे कोई उनका नामलेवा नहीं रह जाता। बोध एवं ज्ञान का अर्थ ही यही है कि सच्चाई दिख जाये। सारे दृश्यमान निर्मित पदार्थों की सच्चाई है बिखरकर अपने कारणतत्त्वों में विलीन हो जाना। दिखाने वाले और देखने वाले दोनों थोड़े दिनों में दुनिया से उठ जाते हैं। हम लोगों को क्या दिखाना चाहते हैं? देह और देह-जनित उपलब्धि ही तो, और यह सब मिट्टी है। इस तथ्य को समझने वाला ही बोधवान है। आश्चर्य तो यह है कि जो नहीं है, वह भी दिखाना चाहते हैं। हम अपना नकली रूप बनाकर दिखाना चाहते हैं। यह और धोखा है।

अपने को प्रदर्शित करने वाले की दृष्टि सदैव असत पर रहती है, इसलिए वह सत-बोध से दूर रहता है। प्रदर्शन ही असत का होता है। सत का प्रदर्शन किया ही नहीं जा सकता। उसके लिए तो संकेत ही किया जाता है कि असत से दृष्टि हटा लो, फिर स्वयं सत रह जायेगा। दृश्य असत है, द्रष्टा सत है; क्योंकि मेरे साथ दृश्य रह नहीं जाता है, और द्रष्टा अलग नहीं हो सकता। 'स्व' के साथ केवल 'स्व' ही रहता है। 'पर' तो मिलकर छूट जाता है। 'पर' का प्रदर्शन होता है, इसलिए 'स्व' ओझल रहता है। जो 'स्व' में स्थित है, वह 'पर' का प्रदर्शन नहीं करता। आत्मा 'स्व' है और देह तथा देहजनित समस्त भौतिक ऐश्वर्य 'पर' है, जो जल बुदबुदेवत बिखरकर सदैव के लिए लुप्त हो जाने वाला है। इसलिए ग्रंथकार कहते हैं कि जो अपने को दिखाना चाहता है, उसे यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता।

जो कुछ और होना चाहता है, वह महान नहीं हो सकता। आध्यात्मिक दृष्टि से आप आत्मा हैं, शुद्ध चेतन। इसी के बोध और स्थिति में रहें, तो सदैव मुक्त ही हैं। व्यावहारिक दृष्टि से आप मनुष्य हैं, जिसका लक्षण है मननशील होना। मननशील वह है जो आत्मा पर पड़े सारे अनात्म परदे को हटाकर शुद्ध आत्मा में स्थित रहे, स्व में स्थित रहे। ऐसा मननशील कुछ और नहीं होना चाहेगा। राजनीति में विधायक, सांसद और मंत्रीपद के लिए तो मारामारी है ही, कितनी धार्मिक संस्थाएं और ट्रस्ट हैं जिनके सदस्यों में उनके पद पर आसीन होने के लिए मारामारी है। यह सब बालकपन है।

मनुष्य श्रेष्ठ है, उसे अपनी मनुष्यता में रहना चाहिए, मननशीलता और विवेक में रहना चाहिए, जिससे शाश्वत शांति है। इससे आगे कुछ होने की

इच्छा करना अपने को गिराना है। स्वाभाविक ढंग से जो पद तथा मर्यादाएं जुड़ती हैं, वे उसकी हानि नहीं करतीं। क्योंकि उनमें उसका मन नहीं रहता, अहंता-ममता नहीं रहती। और जो पद, मर्यादा और वैभव के पीछे भागता है, वह अपनी मनुष्यता से गिर जाता है। मंत्री-संत्री होने की इच्छा करना तो अपने को गिराना है ही, गुरु बनने की इच्छा होना भी अपने को गिराना है। कुछ भी इच्छा न होना, केवल सेवा करना, यही महानता है।

जो अपने को ऐश्वर्य से जोड़कर देखता है, उसका कार्य सिद्ध नहीं होता। मनुष्य का मुख्य कार्य क्या है? सर्वथा दुखरहित परमशांति में रहने के लिए उपाय करना। यह काम उसका नहीं होता जो अपने को दुनिया के ऐश्वर्य से जोड़कर देखता है। सारा ऐश्वर्य क्षणिक, परिवर्तनशील और नाशवान है। जब हम उनमें अपने को जोड़ते हैं, उनमें अहंता-ममता करते हैं, तब उन मिथ्या पदार्थों का हमारे ऊपर नशा चढ़ता है जो हमें अधिक अंधकार में डालता है। इसके फल में हम बहिर्मुख हो जाते हैं। अतएव हमारा कार्य जो आत्मशांति की साधना है, छूट जाता है। सारा ऐश्वर्य पानी का बुलबुला है। जो मनुष्य इसके धोखे में जी रहा है उसके जीवन का परम लक्ष्य उसे कैसे मिल सकता है?

जो अपनी डींग हांकता है, वह ऊंचा नहीं हो सकता। अपने मुख से अपनी विशेषता को बढ़ा-चढ़ाकर बताना डींग हांकना है। यह प्रवृत्ति तो और घोर अंधकार में गिरना है। हम उन्हीं वस्तुओं की डींग हांकते हैं जो क्षणिक हैं, आज हैं और कल नहीं हैं। ऊंचा वह होता है जो लौकिक वस्तुओं की प्रशंसा नहीं करता है, उनमें अपने को नहीं जोड़ता है, अपने सद्‌गुणों का वर्णन नहीं करता है, अपितु अपने को मौन, सबसे पीछे और नीचे रखता है। अपनी डींग हांकनेवाला अंधकार में जीता है।

ताओ की दृष्टि में वह बासी भोजन और मवादयुक्त फोड़ा के सदृश है। और सभी प्राणी उससे घृणा करते हैं। बासी भोजन, सड़ा भोजन त्याज्य होता है। इससे अधिक अशुद्ध मवादयुक्त फोड़ा है, जो दुखदायी भी है। इस संदर्भ में बताये गये लक्षणों वाले मनुष्यों का मन मवादयुक्त फोड़ा ही बना रहता है; क्योंकि वे ताओ से दूर हैं, विश्व-नियमों से दूर हैं। ताओ के निकट वह है जो निर्मान और निष्काम है, अंतर्मुख तथा आत्मलीन है। किंतु जो अहंकारी कथनी-करनी-विरुद्ध, दिखावा वाले, डींग हांकनेवाले हैं; उनसे सभी मनुष्य घृणा करते हैं।

अतएव ताओ को उपलब्ध मनुष्य, इन सबके साथ नहीं जुड़ता। जो जीवन के मर्म को, उसके सच्चे नियम को जानता तथा उनका आचरण करता है, वह उक्त बुराइयों में नहीं पड़ता।

---

25. ताओ (विश्व-नियम) की महत्ता

1. *There is one thing that is invariably complete.*
   Before Heaven and Earth were, it is already there:
   so still, so lonely.
   Alone it stands and does not change.
   It turns in a circle and does not endanger itself.
   One may call it 'the Mother of the World'.

2. *I do not know its name.*
   I call it DAO.
   Painfully giving it a name
   I call it 'great'.

3. *Great: that means 'always in motion'.*
   'Always in motion' means 'far away'.
   'Far away' means 'returning'.
   Thus DAO is great, Heaven is great, Earth is great,
   and Man too is great.
   There are in space four Great Ones,
   and Man is one of them.

4. *Man conforms to Earth.*
   Earth conforms to Heaven.
   Heaven conforms to DAO.
   DAO conforms to itself.

अनुवाद

1. *एक वस्तु है जो सदैव पूर्ण है।*
   स्वर्ग और पृथ्वी के पहले से भी यह है।
   सर्वथा शांत सर्वथा अकेली।
   यह अकेली और अपरिवर्तित है।
   यह चक्र में घूमती है बिना खतरा उठाये।
   आप इसे संसार की जननी कह सकते हैं।

2. मैं इसका नाम नहीं जानता हूं,
मैं इसे ताओ कहता हूं।
यदि इसे नाम देना ही पड़े,
तो मैं इसे 'महान' कहता हूं।

3. महान अर्थात सतत गतिशील।
सतत गतिशील अर्थात विस्तृत।
विस्तृत अर्थात वापस लौटना।
इस प्रकार,
ताओ महान है, स्वर्ग महान है, धरती महान है,
और मनुष्य भी महान है।
ब्रह्मांड में ये चार महान हैं,
और मनुष्य उनमें से एक है।

4. मनुष्य अपने को पृथ्वी के अनुरूप बनाता है।
पृथ्वी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाती है।
स्वर्ग ताओ के अनुरूप बनता है।
ताओ स्वयं के अनुरूप है।

भावार्थ—1. एक नित्य पूर्ण वस्तु है। यह स्थूल विश्व की समग्रता के पहले से है। यह पूर्ण शांत अकेली है और न बदलने वाली है। यह निर्बाध वर्तुल में घूमती है। आप इसे संसार की माता कह सकते हैं।

2. मैं इसका नाम नहीं जानता, किंतु इसे ताओ कहता हूं। इसे महान कहना चाहिए।

3. यह सतत गतिशील, विस्तृत और अपने मूल में लौटने वाली है। इस प्रकार ताओ महान है, स्वर्ग महान है, धरती महान है और मनुष्य भी महान है। संसार में ये चार महान हैं जिनमें मनुष्य एक है।

4. मनुष्य पृथ्वी का अनुसरण करता है, पृथ्वी स्वर्ग का अनुसरण करती है, स्वर्ग ताओ का अनुसरण करता है, और ताओ स्वयं के अनुरूप है।

भाष्य—ताओ विश्व-नियम है। इसे ग्रंथकार नित्यपूर्ण कहते हैं। **यह स्वर्ग और पृथ्वी के पहले से है।** स्वर्ग और पृथ्वी विश्व-समग्रता का सूचक है। ताओ विश्व-नियम है तो वह पहले से है ही। **यह सर्वथा शांत, सर्वथा अकेली और अपरिवर्तित है। यह चक्र में घूमती है बिना खतरा उठाये।** प्रकृति का नियम झगड़ा नहीं करता है इसलिए शांत है, अकेला तो है ही। अपरिवर्तित इस ढंग से है कि वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है। विश्व-नियम को बाधा देने वाला कुछ नहीं है। इसलिए बाधाहीन चक्र में घूमता है। बनना-बिगड़ना, मूल प्रकृति

से स्थूल कार्य-पदार्थ बनना और बिगड़कर पुनः मूल प्रकृति में मिल जाना, यह उसका चक्र है। **आप इसे संसार की जननी कह सकते हैं।** मूल प्रकृति से सारा निर्माण होता है तो वह सबकी जननी है ही।

ग्रंथकार इसे ताओ नाम देते हैं और महान कहते हैं। ग्रंथकार इसके विषय में बहुत भावुक हो जाते हैं। वे ताओ, स्वर्ग, धरती और मनुष्य को महान कहते हैं। ताओ विश्व-नियम है, वह महान है ही। स्वर्ग है पृथ्वी के बाद चमकता तारा मंडल एवं अनंत ब्रह्माण्ड, वह भी महान है ही। पृथ्वी महान है, इसमें कोई संदेह नहीं है। इसी पर मनुष्य हैं, अन्य प्राणी हैं और सारा ज्ञान-विज्ञान है। अंततः मनुष्य को महान कहा गया है। वह तो सबसे महान है। वही ताओ का भी विश्लेषण करता है।

मनुष्य का अर्थ अधिकतम अनुवादक 'किंग' अर्थात राजा करते हैं। राजा श्रेष्ठ है ही, परंतु सामान्य मनुष्य भी श्रेष्ठ हैं।

मनुष्य अपने को पृथ्वी के अनुरूप बनाता है, पृथ्वी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाती है, स्वर्ग ताओ के अनुरूप बनता है और ताओ स्वयं के अनुरूप है। इसका अभिप्राय है कि राजा पृथ्वी पर रहनेवाली प्रजा के साथ अपनी एकात्मता करता है। यही मनुष्य का पृथ्वी के अनुरूप अपने को बनाना है। ''**पृथ्वी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाती है।**'' अर्थात पृथ्वी ब्रह्मांड के नियमों के अनुरूप चलती है। ''**स्वर्ग ताओ के अनुरूप बनता है।**'' अर्थात ब्रह्मांड विश्व-नियमों के अनुसार चलता है। ''**ताओ स्वयं के अनुरूप है।**'' ताओ तो मूल है, विश्व-नियम है। उसका कोई अन्य प्रेरक नहीं, अतएव वह स्वयंभू है। सांख्य दर्शन (1/67) के अनुसार ''मूले मूलाभावादमूलं मूलम्'' अर्थात मूल में मूल न होने से अमूल होता है मूल।

26. गुरुता का गुण

1. *The weighty is the root of the light.*
   Stillness is the lord of restlessness.

2. *Thus also is the Man of Calling.*
   He wanders all day
   without discarding his heavy load.
   Even when he has all the glory before his eyes
   he remains satisfied in his loneliness.
   How much less may the lord of the realm
   take the world lightly in his persona!
   By taking it lightly one loses the root.
   Through restlessness one loses mastery.

अनुवाद

1. *भारी मूल है, हलके का।*
   निश्चल स्वामी है, चलायमान का।

2. *संत इसी प्रकार होते हैं,*
   वे सारा दिन भ्रमण करते हैं,
   अपने संबल को त्यागे बिना।
   यद्यपि सारा ऐश्वर्य उनकी आंखों के सामने है,
   वे अपने अकेलेपन में संतुष्ट रहते हैं।
   राज्य का स्वामी लोगों के सामने,
   अपना हलकापन क्यों दिखायेगा!
   हलकापन दिखाना अपनी जड़ों से दूर होना है।
   चंचल होना अपनी संप्रभुता खोना है।

भावार्थ—1. वजनदार हलके की जड़ है। जो निश्चल है वह चलायमान का स्वामी है।

2. संत इसी ढंग के होते हैं। वे दिन भर घूमते हैं अपने सहारे के साथ। यद्यपि संसार के सारे ऐश्वर्य उनकी आंखों के सामने पड़ते हैं, तथापि वे अपनी

असंगता में संतुष्ट रहते हैं। जो राष्ट्र का सम्राट है वह लोगों के बीच अपना छिछोरापन क्यों दिखायेगा? अपना छिछलापन प्रकट करना अपने केंद्र से हटना है। चंचल होना अपने महत्त्व को खोना है।

भाष्य—भारी मूल है, हलके का। निश्चल स्वामी है चलायमान का। पेड़ अपनी जड़ के साथ बहुत भारी होता है। उसमें उत्पन्न हुए हलके पत्ते, फूल, फल आदि का वही मूल है, कारण है। यह सारा दृश्यमान जगत जो भारी लगता है, वस्तुतः हलका है। इसका मूल-कारण प्रकृति है जो सूक्ष्म होते हुए भारी है। अतएव उत्पन्न-विनष्ट होते हुए दृश्यमान जगत का मूल-कारण प्रकृति है। **निश्चल स्वामी है चलायमान का।** सारा ज्ञान-विज्ञान चलायमान है। सारी लौकिक उन्नति चलायमान है। इनका स्वामी है इनका कर्ता। वह चेतन आत्मा है, जो निश्चल है।

संत इसी प्रकार होते हैं। वे सारा दिन भ्रमण करते हैं, अपने संबल को त्यागे बिना। मूल है, "He wanders all day without discarding his heavy load." अर्थात वे अपना भारी बोझा त्यागे बिना दिन भर घूमते हैं। रिचर्ड विल्हम आज से सौ वर्ष पूर्व लिखते हैं कि चीन में यात्री लोग अपना आसन-बिस्तर लेकर यात्रा में चलते हैं। यहां की सरायों में जब यूरोप के यात्री बिना आसन-बिस्तर के पहुंचने लगे तो उनको बड़ी दिक्कत होती थी। संत तो अपने आसन-बिस्तर के साथ चलते ही हैं। अवध-क्षेत्र में संतों के लिए यह कहावत ही है, ''साधू चलै कैसे? कटहल फलै जैसे।'' जैसे कटहल के पेड़ में आगे-पीछे दायें-बायें बड़े-बड़े फल लटकते हैं, वैसे संत अपना सामान अपने ऊपर लादकर चलते हैं। अब गाड़ी-युग है, यह स्थिति बदल गयी है।

यहां 'हैवी लोड' भारी बोझा उपलक्षण मात्र है। यहां का अर्थ है आत्म-संबल। वह है निर्मोहतापूर्वक आत्मज्ञान, आत्मसंयम और आत्मविश्वास। संतजन संसार में घूमते हैं और वे संसार के लोगों को मोह से जगने का उपदेश करते हैं। वे स्वयं मोह से रहित रहते हैं। पूर्ण निर्मोहता उनका बहुत बड़ा संबल है, जिसमें आत्मज्ञान, आत्मसंयम और आत्मविश्वास का आनुभविक रूप फलता है। इस संबल को लेकर विचरण करने वाला स्वयं कभी धोखा नहीं खाता, अपितु अपनी पूर्ण शांति-दशा में रहता है और दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत बनता है।

यद्यपि सारा ऐश्वर्य उनकी आंखों के सामने है, तथापि वे अपने अकेलेपन में संतुष्ट रहते हैं। संत को भी आंखें होती हैं, मन होता है और इंद्रियां होती हैं। उनके सामने भी संसार की चमक-दमक से भरा-जैसा ऐश्वर्य दिखायी देता है; परंतु वे उसमें थोड़ा भी नहीं मोहते। क्योंकि वे समझते हैं कि यह चमक-दमक झूठी है, क्षणिक है और सदा के लिए छूट जाने वाली है।

इसी के धोखा में पड़कर लोग मोह में फंस जाते हैं और जन्म-जन्मांतर दुख पाते हैं।

वे अपने अकेलेपन में संतुष्ट रहते हैं। असंगता, अकेलापन, अद्वैत, कैवल्य ही सच्चाई है। द्वैत क्षणिक है। दूसरे का साथ, कुछ भी संबंध क्षणिक है। चाहे जितने प्यारे प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति मिलें, वे मेरे साथ रुक नहीं सकते। अपना माना हुआ शरीर क्षण-क्षण क्षीण होते हुए एक दिन सदा के लिए गायब हो जाता है। मेरे पास द्वैत की सारी उपस्थितियां क्षणिक हैं। उनका छूट जाना पक्का है और उन्हीं के राग-द्वेष में हमारी शांति खो जाती है। इसलिए संत संबंध में नहीं, अकेलेपन में संतुष्ट रहते हैं। मिलने से न मिलना अच्छा है, देखने से न देखना अच्छा है, बोलने से न बोलना अच्छा है और मन में कुछ भरने की अपेक्षा उसे खाली रखना अच्छा है। यही अकेले में संतुष्ट रहने का रास्ता है, अद्वैत, असंगता, निर्वाण, कैवल्य का राजमार्ग है।

राज्य का स्वामी लोगों के सामने, अपना हलकापन क्यों दिखायेगा? एक सम्राट प्रजा के सामने लालची-लोभी बनकर अपना हलकापन नहीं दिखाता है। आत्मलीन, आत्माराम, आत्मसंतुष्ट व्यक्ति सम्राट है, वह संसार के क्षणिक पदार्थों में लोभ-मोह कर अपना छिछलापन क्यों दिखायेगा? किसी राष्ट्र का सम्राट असली सम्राट नहीं है; क्योंकि वह सदैव भयभीत रहता है, अतृप्त और असंतुष्ट तो रहता ही है। असली सम्राट वह है जो सदैव आत्म-संतुष्ट है। वह सब तरफ से अप्रभावित रहता है।

हलकापन दिखाना अपनी जड़ों से दूर होना है। चंचल होना अपनी संप्रभुता खोना है। ललचाना, लोभ-मोह करना हलकापन है। सांसारिक चाह पैदा करना ही अपने को हलका करना है। इससे हम अपनी जड़ से दूर हो जाते हैं, अपने मूल से हट जाते हैं। अपनी जड़, अपना मूल आत्मा है। आत्मा ही अपना केंद्र है। बाहर ललचाये, बस अपना मूल खोये। अपना मूल छोड़कर कोई सुखी नहीं रह सकता है।

अपना मूल अपने से छूट नहीं सकता। आत्मा से आत्मा अलग हो ही नहीं सकता। वस्तुत: बहिर्मुख मनोवृत्ति होने पर आत्मा का विस्मरण हो जाता है। यही उसका छूट जाना या उससे हट जाना है। जो बाहर ललचाया वह अपने को खोया। अर्थात अपनी महत्ता को भूल गया। यही सारा दुख है।

चंचल होना अपनी संप्रभुता खोना है। जिसे संपूर्ण अधिकार प्राप्त हो, अर्थात जो सर्वप्रधान सत्ताधारी हो, उसे संप्रभु कहते हैं। अतएव संप्रभुता है पूर्ण अधिकार। पूर्ण अधिकार प्राप्त संपूर्ण सत्ताधारी वह है जो सब तरफ से पूर्ण संतुष्ट है। यदि कोई लौकिक उपलब्धियों की कामना करेगा तो वह अपनी संप्रभुता खो देगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि किसी विकार में पड़कर

जो प्रकंपित होगा वह अपनी संप्रभुता खो देगा। निष्कंप उच्चतम जीवन है। जो कंपित नहीं होता, विचलित नहीं होता, जो निरंतर आत्मसंतुष्ट है, वह संप्रभु है। यदि हम चंचल होते हैं, ललचाते हैं, भयभीत होते हैं, तो अपनी संप्रभुता खोते हैं।

ज्ञान का व्यावहारिक पक्ष उत्कट वैराग्य है। जो ज्ञान जान लेने तक है, वह जीवन नहीं बदल सकता। जो ज्ञान त्याग संपन्न है वही सच्चा ज्ञान है। वैराग्य के बिना त्याग नहीं होता। सारा संबंध जब कांटे के समान लगता है, तब उसमें राग नहीं होता। चाहे जितना प्रिय माना गया हो जो अनात्म है उसमें राग करने से मन दुर्बल बनेगा और हर समय वियोगजनित संभावना का कंपन बना रहेगा। अपनी संप्रभुता तभी बनी रहेगी जब सबसे निरंतर पूर्ण अनासक्त रहा जाय। यही जीवन की सर्वोच्च स्थिति है। जब संसार का राग सर्वथा छूट जाता है तब मनुष्य अपनी संप्रभुता में प्रतिष्ठित होता है। वही सच्चा स्वराट है, सम्राट है। वह अगाध शांति में जीता है।

27. संत की उच्चतम स्थिति

1. *A good wanderer leaves no trace.*
   A good speaker has no need to refute.
   A good arithmetician needs no abacus.
   A good guard needs neither lock nor key—
   and yet no-one can open what he guards.
   A good binder needs neither string nor ribbon,
   and yet no-one can untie what he has bound.

2. *The Man of Calling always knows how to rescue men:*
   therefore, for him there are no abject men.
   He always knows how to rescue things:
   therefore for him there are no abject things.
   This means: living in clarity.
   Thus good men are the teachers of the non-good,
   and non-good men are the subject-matter of the good.
   Whosoever does not cherish his teachers
   and does not love his subject-matter:
   for all his knowledge he would be in grave error.
   This is the great secret.

अनुवाद

1. *एक उत्तम यात्री अपना कोई चिह्न नहीं छोड़ता।*
   एक उत्तम प्रवक्ता को खंडन करने की आवश्यकता नहीं।
   एक उत्तम हिसाबी के लिए गणना-यंत्र की आवश्यकता नहीं।
   एक उत्तम पहरेदार के लिए ताला-चाबी की आवश्यकता नहीं,
   तथापि जिसकी रक्षा वह करता है, उसे कोई खोल नहीं सकता।
   एक उत्तम बांधने वाले के लिए सुतली-फीता की आवश्यकता नहीं,
   तथापि वह जो बांध देता है उसे खोला नहीं जा सकता।

2. संत अच्छी तरह जानते हैं,
लोगों का कल्याण कैसे संभव है।
अतएव, उनके लिए कोई भी मनुष्य परित्यक्त नहीं।
वे सदैव जानते हैं कि वस्तुओं की रक्षा कैसे करना चाहिए।
अतएव, उनके लिए कोई वस्तु त्याज्य नहीं।
इसका भाव है—विवेक में जीना।
इस प्रकार,
सज्जन दुर्जन के गुरु हैं,
और दुर्जन सज्जन की विषय-वस्तु हैं।
जो अपने गुरु का मूल्य नहीं समझता,
और जिसे अपनी विषय-वस्तु प्यारी नहीं,
अपने पूरे ज्ञान के बाद भी,
वह भारी भूल में है।
यही है सूक्ष्म मर्म।

भावार्थ—1. एक अच्छा राहगीर अपनी कोई पहचान पीछे नहीं छोड़ता। एक अच्छे प्रवक्ता को खंडन करने की आवश्यकता नहीं होती। एक अच्छे गणितज्ञ के लिए गणना-यंत्र की आवश्यकता नहीं। एक अच्छे पहरेदार के लिए ताला-चाबी की आवश्यकता नहीं। परंतु जिसकी वह रक्षा करता है उसे कोई खोल नहीं सकता। जो अच्छा बांधना जानता है उसको सुतली-रस्सी की आवश्यकता नहीं है; परंतु उसका बांधा हुआ कोई खोल नहीं सकता।

2. संत को यह पूर्ण ज्ञान है कि मनुष्यों का कल्याण कैसे होगा। इसलिए वे किसी को दूर नहीं करते। वे यह भी जानते हैं कि वस्तुओं की रक्षा कैसे करना चाहिए। इसलिए उनकी दृष्टि में कोई वस्तु फेंकने योग्य नहीं। इसका अर्थ है, सब समय विवेक में रहकर काम करना।

इस तरह सज्जन दुर्जन के गुरु होते हैं और दुर्जन सज्जन की विषयवस्तु होते हैं।

जो अपने गुरु की कीमत नहीं समझता और जिसे अपनी कल्याणरूपी विषय-वस्तु प्यारी नहीं है, वह भले बहुत बड़ा ज्ञानी हो, भयंकर भूल में है। यही है बंधन का रहस्य।

भाष्य—एक उत्तम यात्री अपना कोई चिह्न नहीं छोड़ता। यहां यात्री आध्यात्मिक है। आध्यात्मिक साधना में उत, उत्तर और उत्तम होते हैं। उत का अर्थ है उच्च। जो चोरी, हिंसा, व्यभिचार, कपट, छल, असत्य-भाषण, अभक्ष्य-अपेय आदि त्यागकर परोपकार करता और सदाचारमय जीवन व्यतीत करता है, वह सामान्य लोगों से उच्च है। इस धार्मिक तथा आध्यात्मिक यात्री के

पद-चिह्न होते हैं। साफ है कि जहां लोग चोरी, व्यभिचार आदि अभद्र कर्म करते हैं, वहां यह इन सबसे दूर है और परसेवा आदि सत्कर्तव्य में लगा है। उसके इस सद्गुण को कोई भी समझ सकता है और उसका अनुगमन कर सकता है।

दूसरे हैं जिनमें उक्त संयम और सद्गुण तो हैं ही, इससे आगे स्वरूपज्ञान, भक्ति, वैराग्य, क्षमा, संतोष, समता आदि उच्च सद्गुण भी हैं। ऐसे लोग उच्चतर हैं, श्रेष्ठतर हैं। इनके भी पद-चिह्न हैं। क्योंकि इनके सद्गुण भी प्रत्यक्ष हैं जिनका कोई भी अनुकरण कर सकता है। परंतु तीसरे जो चोटी के हैं, अहंता-ममता-शून्य, ऍम्पटिनेस, निर्विकल्प-समाधि लीन, ये उत्तम हैं। इनमें उक्त दोनों के सद्गुण तो हैं ही, जिनको देखकर कोई अनुकरण कर सकता है, परंतु इस तीसरी स्थिति का कोई पद-चिह्न नहीं होता। यह बाहर से देखा नहीं जा सकता।

अतएव उत्तम यात्री जीवन्मुक्त संत हैं। उनके पद-चिह्न नहीं होते। किसी की जीवन्मुक्ति दूसरा नहीं देख सकता, दूसरा नहीं अनुभव कर सकता। सदाचारी और सद्गुणी तो अपने पद-चिह्न छोड़ता है जिनका अनुकरण करना सरल है, परंतु जीवन्मुक्त के पद-चिह्न नहीं छूटते। यह स्व-संवेद्य है। इसके लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है, ''पक्षी के पथ-चिह्न आकाश में नहीं पड़ते और मछली के पथ-चिह्न जल में नहीं पड़ते। वैसे अंतर्मुख साधना के पथ-चिह्न बाहर नहीं पड़ते।''[1] महाभारतकार ने भी कहा है, ''जैसे आकाश में पक्षियों के और पानी में मछलियों के चलने के पद-चिह्न नहीं दिखते, वैसे ज्ञानियों की गति का पता नहीं चलता।''[2] अतएव संत लाओत्ज़े का यह कथन सारगर्भित है कि उत्तम यात्री के पद-चिह्न पीछे नहीं छूटते। साधना करते-करते इसका स्वयं ही अनुभव होता है। जब तमोगुण और रजोगुण पूर्ण शांत हो जाते हैं और सतोगुण का भी अहंकार मर जाता है, तब निर्विकल्प समाधि की घटना घटती है, जो केवल स्व-संवेद्य है।

एक उत्तम प्रवक्ता को खंडन करने की आवश्यकता नहीं। उत्तम प्रवक्ता वह है जो सत्य कहता है, और सत्य कह देने पर झूठ अपने आप मर जाता है। उसका अलग से खंडन नहीं करना पड़ता। उत्तम कथन का दूसरा भी खंडन नहीं कर सकता। उत्तम कथन है निर्दोष कथन, जिसमें अतिव्याप्ति, अव्याप्ति

---

1. **पन्छिक खोज मीन को मारग, कहैं कबीर दोउ भारी।**
   अपरं पार पार पुरुषोत्तम, मूरति की बलिहारी॥ बीजक, शब्द 24॥
2. **शकुनानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके।**
   पथं यथा न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः॥
   (महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 181, श्लोक 19)

और असंभव दोष न हों। गाय उसे कहते हैं जिसके सींग होते हैं, यह लक्षण अतिव्याप्ति दोष से पूर्ण है; क्योंकि अन्य जानवरों के भी सींग होते हैं। गाय उसे कहते हैं जो लाल रंग की होती है, यह लक्षण अव्याप्ति दोष से पूर्ण है; क्योंकि गायें केवल लाल ही नहीं, काली, सफेद, भूरी आदि भी होती हैं। गाय उसे कहते हैं जिसके खुर फटे न हों, यह लक्षण असंभव दोष से पूर्ण है; क्योंकि बिना फटे खुरवाली गाय होती ही नहीं। निर्दोष लक्षण ही सही लक्षण है। सही लक्षण तभी घटते हैं जब वस्तु में से अनावश्यक बातें हटाते जायें और तथ्य मात्र रह जाये।

कोई कहे कि अमुक वर्ग, जाति, संप्रदाय के लोग खराब होते हैं, तो यह कथन निर्दोष नहीं है; क्योंकि सभी वर्ग, जाति एवं संप्रदाय में अच्छे लोग भी होते हैं। अतएव उक्त कथन का खंडन हो जायेगा। जो कथन अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असंभव दोष से रहित है, कार्य-कारण-व्यवस्था के अनुकूल है, उसका खंडन कोई नहीं कर सकता। ऐसा कथन करने वाला ही उत्तम प्रवक्ता है।

एक उत्तम हिसाबी के लिए गणना-यंत्र की आवश्यकता नहीं। यह बात स्पष्ट है। वैसे संत लाओत्ज़े ईसा की इक्कीसवीं शताब्दी में आ जायें तो उनको कहना पड़ेगा कि भाई ठीक है, आज-कल हर हिसाबी के हाथ में कलकुलेटर चाहिए। परंतु यह तो बाहरी बात है। वस्तुतः अच्छा हिसाबी वह है जो अपने गुण-दोषों को समझता है और निरंतर दोषों को घटाते हुए सद्गुण बढ़ाता है और धीरे-धीरे अपने जीवन को सद्गुण संपन्न कर लेता है।

एक उत्तम पहरेदार के लिए ताला-चाबी की आवश्यकता नहीं। उत्तम पहरेदार वह है जो ईमानदार, सावधान और अपनी कर्तव्यनिष्ठा में समर्पित है। उसके लिए ताला-चाबी की कोई आवश्यकता नहीं है। **तथापि जिसकी रक्षा वह करता है, उसे कोई खोल नहीं सकता।** जब पहरेदार अपने कर्तव्य में जागरूक है तो उसके सुरक्षित धन को कोई नहीं चुरा सकता।

वस्तुतः उत्तम पहरेदार वह है जो अपने संयम और शील को सुरक्षित रखता है। वह उनमें कोई बाहरी ताला-चाबी नहीं लगाता है, क्योंकि उनके वह विषय ही नहीं हैं। परंतु उसके संयम और शील की सुरक्षा को कोई अन्य तोड़ नहीं सकता है।

एक उत्तम बांधने वाले के लिए सुतली-फीता की आवश्यकता नहीं, तथापि जो वह बांध देता है उसे कोई खोल नहीं सकता। उत्तम बांधनेवाला वह है जिसने अपने मन-इंद्रियों को बुरे मार्ग से हटाकर उन्हें कल्याण-पथगामी बना लिया, शमित और दमित कर लिया। मन-इंद्रियों को संयम में बांधने के लिए सुतली-फीता की आवश्यकता नहीं होती। परंतु उसके संयम रूपी बंधन को कोई खोल नहीं सकता।

संत अच्छी तरह जानते हैं कि लोगों का कल्याण कैसे संभव है। अतएव उनके लिए कोई भी मनुष्य परित्यक्त नहीं है। संत करुणा करके जो जैसा है उसके कल्याण के लिए उसी स्तर से मिल लेते हैं। सन 1966 ई0 फाल्गुन माह की बात है। बाराबंकी जिले के ब्राह्मणपुरवा नाम के गांव में सद्‌गुरु विशाल साहेब विराजमान थे। हम उनके दर्शनार्थ गये थे। उनके सभी संत विद्यमान थे। एक दिन चार बजे शाम एक अनपढ़ गंवार बूढ़ा आया विशाल साहेब से मिलने के लिए। वह उनका पुराना परिचित था। उसने विशाल देव से कहा, ''साहेब! मैं आपके दर्शनार्थ बहुत दिनों से आने की सोच रहा था, परंतु 'वह' मेरा पैर पकड़कर रोक लेता था।'' विशाल देव ने उससे कहा, ''यदि तुम आने के लिए तैयार हो ही जाते तो 'वह' तुम्हें छोड़ देता।'' उसने कहा, ''अच्छा साहेब! अब ऐसा ही करूंगा।''

मैं वहीं खड़ा था। मैं इस बात को नहीं समझ पाया कि 'वह' कौन था जो इसके पैर पकड़कर आने से रोक लेता था। जब आगंतुक बूढ़ा चला गया, तब मैंने विशाल देव से पूछा, ''साहेब! यह बूढ़ा किसे कहता था कि 'वह' पैर पकड़कर रोक लेता था। इसका 'वह' कौन है?'' विशाल देव ने कहा, ''यह आदमी भूत-प्रेत मानता है। उसी को यह कहता था कि 'वह' पैर पकड़कर रोक लेता था। इसका 'वह' भूत-प्रेत है।'' मैंने कहा, ''गुरुदेव! आपने यह क्यों नहीं कहा कि भूत-प्रेत असत्य हैं?'' विशाल देव ने कहा, ''यदि मैं ऐसा कह देता, तो वह रूठकर चला जाता, फिर कभी नहीं मिलता। उसका कुछ प्रेम रहेगा और आता-जाता रहेगा तो कभी समझना होगा तो समझ लेगा, अन्यथा सामान्य प्रेम तो बना ही रहेगा।'' बड़े पुरुष इस तरह उत्तम, मध्य, कनिष्ठ सबको निभाने का विशाल हृदय रखते हैं।

वे सदैव जानते हैं कि वस्तुओं की रक्षा कैसे करना चाहिए, अतएव उनके लिए कोई वस्तु त्याज्य नहीं। अन्न अमृत है। उसके बिना कोई जी नहीं सकता, परंतु उसका दुरुपयोग किया जाये तो वह विष बन जायेगा। विष प्राणघातक है, परंतु सदुपयोग करके दवाई बना ली जाये तो प्राणरक्षक हो जायेगा। अतएव हर वस्तु का सदुपयोग करके उसको उपयोगी बनाया जा सकता है।

एक बार साकेत नरेश ने तथागत बुद्ध से निवेदन किया कि कृपाकर आप आनंद को हमारे राजभवन की वाटिका में कुछ समय निवास करने की आज्ञा दें जिससे उनसे हम और हमारे परिवार के लोग कुछ परमार्थ के उपदेश सुनें और सीखें। तथागत के आज्ञानुसार आनंद पांच सौ भिक्षुओं (साधुओं) को लेकर साकेत नरेश की वाटिका में रहने लगे। राजा और रानियां तथा अन्य स्वजन नित्य आनंद के उपदेश सुनते थे।

राजा की पांच सौ पत्नियां थीं।[1] उन्होंने एक दिन पांच सौ शाल मंगाकर रानियों को एक-एक दिया। रानियों ने अगले दिन उन सभी शालों को आनंद की सेवा में समर्पित कर दिया। दूसरे दिन राजा ने उन रानियों को देखा तो कोई वह शाल ओढ़कर उनके पास आते नहीं दिखी। राजा ने कहा, ''तुम लोगों को जो मैंने शाल दिया है, उनका उपयोग क्यों नहीं करती हो।'' रानियों ने कहा, ''हमने उन सभी शालों को भंते आनंद की सेवा में समर्पित कर दिया।'' राजा को थोड़ा गुस्सा आया और उसने कहा, ''क्या भंते आनंद शालों की दुकान खोलेंगे?'' रानियों ने कोई उत्तर नहीं दिया।

राजा आनंद के पास जब पहुंचा, तब उसने उनसे पूछा, ''भंते! आप रानियों द्वारा समर्पित पांच सौ शाल क्या करेंगे?'' आनंद ने कहा, '' मेरे साथ पांच सौ साधु हैं। मैंने उन सबको एक-एक शाल बांट दिया है।'' राजा ने पूछा, ''तो वे जो पहले से शाल ओढ़ते हैं, उन्हें क्या करेंगे?'' आनंद ने कहा, ''उन्हें बिछायेंगे।'' राजा ने कहा, ''जो बिछाते रहे, उन्हें क्या करेंगे?'' आनंद ने कहा, ''उन्हें पैर पोंछने के काम में लेंगे।'' राजा ने कहा, ''जिनसे वे पैर पोंछते थे उनको क्या करेंगे?'' आनंद ने कहा, ''भिक्षु उन्हें कूटकर और मिट्टी में मिलाकर दीवार और जमीन लीपेंगे।'' राजा ने कहा, ''जिनके जीवन में वस्तुओं का इतना अच्छा उपयोग है उनको देना महा फलदायक है।''

इसका भाव है, विवेक में जीना। वस्तु और व्यक्ति का सही उपयोग विवेक से ही संभव है। इसीलिए कहा है, ''जाही को विवेकज्ञान, ताही को कुशल जान, जाही ओर जाय, वाको वाही ओर सुख है।''

सज्जन दुर्जन के गुरु हैं और दुर्जन सज्जन की विषय-वस्तु हैं। सज्जन मनुष्य दुर्जनों को सही रास्ता दिखाकर उन्हें सुधारने का प्रयत्न करते हैं। इसके साथ दुर्जन सज्जन की विषय-वस्तु भी बनते हैं। अर्थात दुर्जन की दुर्जनता से सज्जन सीख भी लेते हैं, कि यदि मेरे जीवन में दुर्जनता के कर्म होंगे, तो मेरी भी दुर्गति होगी। सज्जन संतों के सद्गुणों से तो सीख लेते ही हैं, दुर्जनों से भी सीख लेते हैं कि इनके पथ से दूर रहना है।

जो अपने गुरु का मूल्य नहीं समझता, और जिसे अपनी विषय-वस्तु प्यारी नहीं, अपने पूरे ज्ञान के बाद भी, वह भारी भूल में है। यही है सूक्ष्म मर्म। वस्तुत: जिसे अपनी विषय-वस्तु प्यारी नहीं होती, वही अपने गुरु का मूल्य नहीं समझता है। किसी भी क्षेत्र का ज्ञान हो, उसका मूल्य समझने वाला उस विषय के गुरु का मूल्य समझेगा। यहां बात अध्यात्म की है। जिसे अपना कल्याण प्रिय होगा, वह अपने सद्गुरु का मूल्य समझेगा। यदि ऐसा नहीं है तो

1. पांच सौ पत्नियों की बात अतिशयोक्ति लगती है; जो त्रिपिटक की शैली है।

वह चाहे जितना बड़ा ज्ञानी हो, भयंकर भूल में है। गुरु-भक्ति का त्याग करके किसी का कल्याण संभव नहीं है। भक्ति के सहारा बिना ज्ञान के नोक पर मोक्ष-पदार्थ नहीं उठाया जा सकता है। श्रद्धा-भक्ति कल्याण के लिए महा संबल है। इससे बिछुड़ जाने पर ज्ञान काम नहीं देगा।

संत लाओत्ज़े कहते हैं, ''**यही है सूक्ष्म मर्म।**'' यह गूढ़ रहस्य है। इसको समझना कठिन है। ज्ञान हो जाने पर सावधान न रहने से अहंकार चढ़ बैठता है। ज्ञानी सोचता है, अब तो मेरा बेड़ा पार है और वह जगह-जगह प्रमाद करता है। जो अपने सिर पर गुरु को रखता है, वह नहीं भटकता। गुरुभक्ति से अहंकार का दमन हो जाता है। परंतु इस तथ्य पर कम लोग ध्यान देते हैं। थोड़ा कहना-सुनना जान जाने पर कितने लोग ज्ञानी बने भटकते हैं। अतएव कल्याणार्थी को गुरुभक्ति का सहारा जीवनपर्यंत नहीं छोड़ना चाहिए।

अनादिकाल से जीव देह का अहंकारी है और देहजनित नाम, रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, बुद्धि, लौकिक ऐश्वर्य आदि में अपनी अहंता-ममता बनाते आया है। बौद्धिक और शास्त्रीय ज्ञान हो जाने से जड़ाध्यास तथा अनात्म वस्तुओं के प्रति लगी हुई अहंता-ममता तत्काल नहीं कट जाती। चाहे गृहस्थ साधक हो या विरक्त, बौद्धिक ज्ञान का अहंकार आने में देरी नहीं लगती। अहंकार आते ही गुरुभक्ति छूट जाती है और तब साधक अपनी स्थिति से नीचे आने लगता है। अतएव ज्ञान और वैराग्य दोनों सद्गुणों को स्थायी रखने वाली गुरुभक्ति है। वेष धरकर पुजा-खा लेना बड़ी बात नहीं है। अंतर्मुखता के अथाह सागर में निरंतर निमज्जन करना ज्ञान का फल है और यह गुरुभक्ति के सहारा बिना असंभव है।

28. संत और गुरु का महत्त्व

1. *Whosoever knows his maleness*
   and guards his femaleness:
   he is the gorge of the world.
   If he is the gorge of the world
   eternal Life does not leave him
   and he becomes again as a child.

2. *Whosoever knows his purity*
   and guards his weakness
   is an example to the world.
   If he is an example to the world
   eternal Life does not leave him
   and he returns to the uncreated.

3. *Whosoever knows his honour*
   and guards his shame:
   he is the valley of the world.
   If he is the valley of the world
   he finds satisfaction in eternal
   Life and returns to simplicity.

4. *If simplicity is dispersed there will be 'useful' men.*
   If the Man of Calling practices it
   he will be the lord of the servants.
   Therefore: Great Design
   has no need for pruning.

अनुवाद

1. *जो अपने पौरुष को जानता है,*
   और अपने स्त्रीत्व को बचाये रखता है,
   वह संसार के लिए घाटी सदृश है।
   जब वह संसार के लिए घाटी होता है,

तब शाश्वत जीवन उसे नहीं छोड़ता,
और वह पुनः बालवत हो जाता है।

2. *जो अपनी पवित्रता को जानता है,*
अपनी कोमलता को बचाये रखता है,
वह संसार के लिए एक उदाहरण बनता है।
जब वह संसार के लिए उदाहरण बनता है,
तब शाश्वत जीवन उसे नहीं छोड़ता,
और वह अकृत की ओर लौटता है।

3. *जो अपने सम्मान से परिचित है,*
और अपनी लज्जा को बचाये रखता है,
वह संसार के लिए घाटी है।
संसार के लिए घाटी होकर,
वह शाश्वत जीवन में संतुष्ट हो जाता है,
और सहजता की ओर लौटता है।

4. *जब उसकी सहजता विखंडित होती है,*
तब 'उपयोगी' आदमी का उदय होता है।
जब संत ऐसा करते हैं,
तब वे अनुगामियों के स्वामी होते हैं।
इस प्रकार महान व्यवस्था में,
काट-छांट की गुंजाइश नहीं।

भावार्थ—1. जो अपने साहस को समझता है, साथ-साथ विनम्रता को सुरक्षित रखता है, वह लोगों के जीवन-पोषण के लिए ऊर्जा देनेवाला होता है। ऐसी स्थिति में उसका जीवन शाश्वत हो जाता है, और फिर वह बालवत सरल हो जाता है।

2. जो अपनी परिशुद्धि से परिचित है और अपनी विनम्रता को सुरक्षित रखता है; वह लोगों के लिए उत्तम उदाहरण बनता है। उसका जीवन शाश्वत हो जाता है, वह मोक्ष की तरफ लौटता है।

3. जो अपने महत्त्व को समझता है, और अपनी लज्जा को सुरक्षित रखता है, वह संसार के लिए शक्ति-दाता है। वह शाश्वत जीवन में संतुष्ट होकर अपनी सहजता में लौट आता है।

4. जब संत की सहजता विखंडित होती है, तब वह संसार के लिए उपयोगी मनुष्य बनता है। जब संत ऐसा करते हैं, तब वे अनुगामियों के स्वामी

होते हैं। यह कारण-कार्य की व्यवस्था है। इसमें तर्क करके बदलने की सुविधा नहीं है।

भाष्य—जो अपने पौरुष को जानता है और अपने स्त्रीत्व को बचाये रखता है, वह संसार के लिए घाटी सदृश है। पौरुष का अर्थ है पुरुष संबंधी। इसका लाक्षणिक अर्थ है शक्ति, साहस। स्त्रीत्व का अर्थ है स्त्री-स्वभाव। इसका लाक्षणिक अर्थ है विनम्रता। पर्वतों के बीच की खाली जगह को घाटी कहते हैं। घाटी शून्य जगह है, परंतु ऐसा शून्य नहीं है जिसमें कुछ न हो। वस्तुत: उसमें अधिक ऊर्जा रहती है। वहीं से ऊर्जा लेकर पर्वत ऊपर उठते हैं। पेड़-पौधे, पर्वत जो उगने वाले और बढ़ने वाले होते हैं वे अपने आस-पास के बिखरे सूक्ष्म परमाणुओं को लेकर ही बल प्राप्त करते और बढ़ते हैं। ग्रंथकार ने घाटी का उदाहरण कई जगह दिया है। घाटी खाली है, शून्य है। जो अपने को शून्य कर लेता है, अर्थात जो अपने अकृत, अक्षय स्वरूप में स्थित हो जाता है, और अपने मन को संसार की वासनाओं से खाली कर लेता है, प्रपंच-शून्य-हृदय हो जाता है, वह घाटी सदृश है। वह प्रपंच-शून्य घाटी होकर संसार को बहुत ऊर्जा देनेवाला हो जाता है।

ग्रंथकार कहते हैं कि जो अपने साहस को, बल को समझता है और उसका उपयोग अपने कल्याण और दूसरे की सेवा में करता है, किंतु इसके साथ अपने स्त्रीत्व को, विनम्रता को बचाये रखता है, सुरक्षित रखता है, वह संसार के लिए घाटी सदृश हो जाता है। वह स्वयं प्रपंच-शून्य होकर भी दूसरों को आध्यात्मिक ऊर्जा देनेवाला हो जाता है।

स्त्री हो या पुरुष, यह तो देह के कुछ अंगों की भिन्नता के लक्षण हैं। दोनों में आत्मा एक समान है। इसलिए आत्मा मात्र को पुरुष कहा गया है। पुर् = आगे, उष = जलाना—पुरुष। जो आगे-आगे ज्ञान-प्रकाश करता रहे वह जीव पुरुष है। अथवा 'पुरि शेते पुरुष:' शरीररूपी पुर में सोनेवाला, रहनेवाला जीव पुरुष है। अतएव चाहे स्त्री-शरीर-धारी हो और चाहे पुरुष-शरीर-धारी हो, दोनों मनुष्य हैं। उन्हें अपने पौरुष को, बल को समझना चाहिए, और अपने स्त्रीत्व को, विनम्रता को सुरक्षित रखना चाहिए।

स्त्री और पुरुष दोनों में पुरुषत्व और स्त्रीत्व है। उनमें साहस और बल पुरुषत्व है तथा विनम्रता स्त्रीत्व है। विनम्रता के बिना साहस दुस्साहस बन जाता है और व्यक्ति उच्छृंखल हो जाता है; और साहस के बिना विनम्रता कायरता हो जाती है। दोनों से ही व्यक्तित्व पूर्ण होता है। इस पुरुषत्व और स्त्रीत्व को हम ज्ञान और भक्ति के नाम से भी समझ सकते हैं। भक्ति-रहित ज्ञान मनुष्य को उन्मादी बनाता है और ज्ञान-रहित भक्ति मनुष्य को कायर बनाकर कल्पित देवताओं के सामने गिड़गिड़ाना सिखाती है। ग्रंथकार कहते हैं कि अपने पौरुष

का अनुभव रखते हुए जो अपने स्त्रीत्व को सुरक्षित रखता है, अपनी पूर्ण विनम्रता को बनाये रखता है, वह धोखा नहीं खाता, अपितु ऐसा वीर और विनम्र व्यक्ति शीघ्र ही संसार की सब इच्छाओं को छोड़कर घाटी बन जाता है, प्रपंच-शून्य होकर साधकों के लिए आध्यात्मिक ऊर्जा का दाता बन जाता है।

जब वह संसार के लिए घाटी होता है, तब शाश्वत जीवन उसे नहीं छोड़ता, और वह पुनः बालवत हो जाता है। जो आत्मज्ञान में पूर्ण, साधना एवं त्याग में वीर, रहनी में विनम्र और प्रपंच-शून्य है, वह बालकवत सरल होता है। अपने मूल स्वरूप में लौट आनेवाला मनुष्य समस्त अनात्म वस्तुओं की आसक्ति से मुक्त हो जाता है; इसलिए वह बालकवत सरल हो जाता है। वह क्षणिक दैहिक जीवन में रहते हुए भी अनंत, शाश्वत आत्मिक जीवन में प्रतिष्ठित हो जाता है।

जो अपनी पवित्रता को जानता है, अपनी कोमलता को बचाये रखता है, वह संसार के लिए एक उदाहरण बनता है। अपनी पवित्रता का सब समय पूर्ण ज्ञान रखना बड़ी बात है। जिसका मन सब समय विकारहीन है, वह सब समय पवित्र है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, वासना, तृष्णा, राग-द्वेष आदि मानसिक कुतर्क विकार हैं। जिसके मन में यह नहीं है वह सब समय पवित्र है। अपनी पवित्रता को जानने का तात्पर्य है पवित्रता में जीना, निरंतर उसका साक्षात्कार रहना, कभी मलिनता न आने देना। ऐसा सावधान एवं परिपक्व साधक अत्यन्त कोमल होता है। सारी मानसिक ग्रंथियों के पूर्णतया कट जाने पर कोमलता ही अवशेष रहती है। ऐसे व्यक्ति संसार के लिए उदाहरण, प्रमाण, आदर्श बनते हैं।

ज्ञान की बात करने वाले तो बहुत लोग हैं जो स्वयं अज्ञान में, गंदगी में भटकते हैं। उनका कोई मूल्य नहीं है। साधक को सहारा मिलता है उससे जो पवित्रता में जीता है। काम-क्रोध-लोभ में नहीं पड़ना चाहिए, ऐसा सब कहते हैं और वे उनके शिकार होते हैं। इसलिए लोगों को लगता है कि यह केवल कहने की बात है, ऐसा कोई होता नहीं है। परंतु जब हमारे बीच में कोई ऐसा व्यक्ति होता है जो काम-क्रोधादि विकारों से छूटा हुआ है, तब हमें साहस होता है कि हम भी ऐसा निर्मल हो सकते हैं। अतएव निर्मल आत्मा ही लोगों के लिए उदाहरण बनता है।

जब वह संसार के लिए उदाहरण बनता है, तब शाश्वत जीवन उसे नहीं छोड़ता, और वह अकृत की ओर लौटता है। निर्मल आत्मा ही संसार के लिए उदाहरण बनता है, तब वह शाश्वत जीवन में प्रतिष्ठित हो जाता है जो अनंत आत्मिक है। इसलिए वह 'Uncreated' अकृत-अनिर्मित-अक्षय आत्मा की तरफ

लौटता है। संसार की आसक्ति से सर्वथा छूटा हुआ व्यक्ति अपने आत्मा में, स्व-स्वरूप में स्थित होता है।

ध्यान रहे, जड़-प्रकृति और चेतन-पुरुष दोनों अनक्रियेटेड हैं, अनिर्मित एवं मौलिक हैं। जड़-प्रकृति विकारी है और उससे संसार के कार्य-पदार्थ बनते हैं और बिखरकर पुनः उसी जड़-प्रकृति में लीन हो जाते हैं। इससे भिन्न निर्विकार चेतन पुरुष हैं। उनमें से जो समस्त सांसारिक मोह छोड़कर आत्मलीन हो जाता है वह अपने अकृत-अनक्रियेटेड आत्मा में स्थित हो जाता है।

जो अपने सम्मान से परिचित है, और अपनी लज्जा को बचाये रखता है, वह संसार के लिए घाटी है। वह शाश्वत जीवन में संतुष्ट हो जाता है, और सहजता की ओर लौटता है। अपने सम्मान से परिचित होने का अर्थ है अपनी पवित्र रहनी में पूर्ण सावधान होना। संत बाहरी सम्मान नहीं चाहते। वे समझते हैं कि हमारा सम्मान निरंतर निर्मल दशा में रहना है। जो अपनी पवित्रता से परिचित है वह अपने सम्मान से परिचित है। क्योंकि उसकी दृष्टि में पवित्रता ही सम्मान है। बाहरी सम्मान तो भ्रष्ट मनुष्य का भी होता है। उसकी कोई कीमत नहीं है। पूर्ण संयम ज्ञानी का अपना सम्मान है। वह अपनी लज्जा को बचाये रखता है। अर्थात वह कभी ऐसा काम नहीं करता जिससे उसको लज्जित होना पड़े। अपनी लज्जा बचाये रखने का अर्थ है अपने पर पूर्ण संयम रखना। वह स्वयं प्रपंच-शून्य बनकर दूसरों को उनके कल्याण में शक्ति देता है, जैसे घाटी शून्य दिखती हुई भी पर्वतों को ऊर्जा देती है।

ऐसा व्यक्ति अपने शाश्वत आत्मिक जीवन में संतुष्ट होता है। जो दैहिक जीवन के मोह से सर्वथा ऊपर उठ जाता है, वह आत्मिक जीवन में संतुष्ट होता है। आत्मिक जीवन अनंत है, शाश्वत है। ऐसा आत्मलीन मनुष्य सहजता की ओर लौटता है। मनुष्य का सहज स्वरूप है चेतन। जब ज्ञानी देह, प्राण, मन, बुद्धि आदि समस्त जड़ औपाधिक दृश्यमान संसार का अभाव कर अपने स्वरूप में स्थित होता है तब वह अपनी सहजता में होता है।

कुछ मानना, सोचना, देखना, सुनना आदि आत्मिक दृष्टि से असहज है। इसी में सारा दुख है। हम रात-दिन देख, सुन, जानकर दुखी रहते हैं। जब देखना, सुनना, जानना आदि छोड़कर ज्ञानी आत्मलीन होता है तब यह उसकी सहज स्थिति है। संत कबीर साहेब ने कहा है—

सहज-सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्हें कोय।
जो सहजै विषया तजै, सहज कहावै सोय॥

सारे विषयों को छोड़ दिया, तब स्वयं आत्मा शेष रहा। यही शेष, बक़ा, अद्वैत, कैवल्य, असंग, स्वरूपमात्र, चेतन मात्र स्थिति सहज दशा है।

जब उसकी सहजता विखंडित होती है, तब उपयोगी आदमी का उदय होता है। ज्ञानी उस सहज स्थिति को दीर्घकाल तक साधते हुए जीवन्मुक्ति में जीता है। वह जब पीछे लोगों को उपदेश देने के लिए उन्मुख होता है, तब मानो उसकी सहजता विखंडित होती है और वह लोगों के कल्याण के लिए उपयोगी बनता है।

अपनी आत्मस्थिति की सहजता में जीकर मौन भाव से देह छोड़ दें, तो उनका कल्याण हो जायेगा, परंतु वे दूसरों के लिए उपयोगी मनुष्य नहीं बन पायेंगे। किंतु जब वे अपनी सहजता को छोड़कर, विखंडित कर बहिर्मुख होते हैं, तब वे लोगों के लिए उपयोगी आदमी बनते हैं। संसार के संत पुरुष केवल अपनी उच्चतम दशा जीकर चले जाते, वे संसार को उपदेश न देते, तो वे दुनिया के लिए कोई उपयोगी नहीं बनते। अतएव ग्रंथकार का यह महत्त्वपूर्ण कथन है कि जब उसकी सहजता विखंडित होती है तब उपयोगी आदमी का उदय होता है।

प्रश्न होता है कि यदि उनकी सहजता विखंडित हो गयी, तो उनके कल्याण में क्या बाधा नहीं हो जायेगी? वस्तुत: वे भीतर से ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति के बल से इतना बलवान हो जाते हैं कि उनके कल्याण में कोई बाधा नहीं होती है।

सद्गुरु कबीर ने कहा है, ''जिस रास्ते से पुरोहित एवं पंडित लोग जाते हैं, उसी रास्ते से भीड़ भी जाती है; कबीर तो सबसे अलग एवं स्वतंत्र होकर स्वरूपस्थिति रूपी राम की ऊंची घाटी पर चढ़ जाता है। परंतु हे कबीर! संसार के जीव अविवेक-वश दूसरों के हाथों में पड़े हुए भटक रहे हैं। अतएव तुम उनके उद्धार के लिए राम की ऊंची घाटी एवं समाधि-सुख छोड़कर लोगों के बीच में उतर आओ। क्योंकि तुम्हारे पास विवेकज्ञान का संबल है, पाथेय है और स्वावलंबन तथा स्व-श्रम का परोहन है। वे तुम्हारे पास से घटने वाले नहीं हैं। अतएव ऐसा करने से तुम्हारा कुछ बिगड़ेगा नहीं, प्रत्युत भूले जीवों का उद्धार होगा।'' मूलवचन इस प्रकार है—

जेहि मारग गये पंडिता, तेई गई बहीर।
ऊँची घाटी राम की, तेहि चढ़ि रहै कबीर॥
ये कबीर तैं उतरि रहु, तेरो सम्मल परोहन साथ।
सम्मल घटे न पगु थके, जीव बिराने हाथ॥

(बीजक, साखी 31, 32)

जब संत ऐसा करते हैं, तब वे अनुगामियों के स्वामी होते हैं। इस प्रकार महान व्यवस्था में कांट-छांट की गुंजाइश नहीं। जब तक संत अपनी सहज दशा में रहते हैं तब तक वे संत हैं, और जब वे उसे छोड़कर लोगों को उपदेश

देते हैं तब वे सद्‌गुरु होते हैं, अनुगामियों के स्वामी होते हैं। यह संत और सद्‌गुरु की महान व्यवस्था है, शाश्वत सिद्धांत है। इसमें कोई काट-छांट करता है, अर्थात बिना उस सहज दशा में पहुंचे गुरु बनने के चक्कर में पड़ता है, तो वह अपनी कल्याणदशा से भटक जाता है।

ध्यान रहे, संत अपनी सहज दशा को कभी विखंडित नहीं करते। यहां ग्रंथकार तथा उदाहरण में कबीर साहेब के कहने की एक शैली है। स्वरूपस्थिति प्राप्त संत उपदेश देने के चक्कर में नहीं पड़ते हैं तो उनको शिष्यों के द्वंद्व नहीं झेलने पड़ते हैं और यदि वे उपदेश देते हैं तो शिष्यों के द्वंद्व झेलने पड़ेंगे। जो इसको भी सहज ही झेल ले वही गुरु होने का अधिकारी है। यदि गुरु ने शिष्यों के द्वंद्व में अपनी सहज दशा एवं शांति को खो दिया, तो वह अनुत्तीर्ण है।

जब उसकी सहजता विखंडित होती है। इस कथन का अर्थ एक मर्यादा में है। यहां विखंडित का अर्थ सहजता का नाश नहीं है, अपितु उससे थोड़ा हटकर दूसरे के कल्याण पर भी ध्यान देने की बात है। वस्तुत: संत अपनी सहजता से हटता नहीं है, अपितु दूसरे का हित भी करता है। संत की यह समाज पर अपार करुणा है कि अपनी समाधि से हटकर लोगों को जगाने के लिए उनको उपदेश करते हैं।

साधक सावधान रहें। वे दूसरों के उद्धार करने के व्यामोह में पड़कर अपना पतन न करें। अनेक ऐसे साधक तथा साधु नामधारी हैं जिनकी रहनी में कोई ठिकाना नहीं है, परंतु वे सद्‌गुरु बने दूसरों के उद्धार में लगे हैं। ऐसे लोग स्वयं डूबते हैं और अपने शिष्य नामधारियों को भी डुबाते हैं। इस स्थिति को ध्यान में रखकर सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—

घर-घर मंतर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना।
गुरु सहित शिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना॥

(बीजक, शब्द 4)

---

29. अधिकार और बड़प्पन की कामना का त्याग सुखद पथ है

1. *Conquering and handling the world:*
   I have experienced that this fails.
   The world is a spiritual thing
   which must not be handled.
   Whosoever handles it destroys it,
   whosoever wants to hold on to it loses it.

2. *Now things run ahead, now they follow.*
   Now they blow warm, now they blow cold.
   Now they are strong, now they are thin.
   Now they are on top, now they topple.
   Therefore the Man of Calling avoids
   what is too intense, too much, too big.

अनुवाद

1. *संसार को जीतकर,*
   अपनी मर्जी से उसे चलाना,
   मेरा अनुभव है,
   यह संभव नहीं।
   संसार एक आध्यात्मिक वस्तु है,
   उसमें मनमर्जी संभव ही नहीं।
   जो भी इसमें मनमर्जी करता है,
   उसे नष्ट करता है,
   जो भी इसे पकड़कर रखना चाहता है,
   खोता है।

2. *अभी चीजें आगे हैं, अभी पीछे हो गयीं।*
   अभी गरम श्वास, अभी ही ठंडा श्वास।

अभी उनमें शक्ति है, अभी वे कमजोर हो गयीं।
अभी वे ऊंचाई पर हैं, अभी वे लड़खड़ा गयीं।
अतएव,
संत सारे अति से दूर रहते हैं,
अत्यंत तीव्र, आधिक्य और अधिक बड़ा होने से।

भावार्थ—1. मेरा ऐसा अनुभव है कि संसार के लोगों को जीतकर और उनको अपने कब्जे में लेकर अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें चलाना संभव नहीं है। संसार निरा जड़-पदार्थ नहीं, अपितु आध्यात्मिक वस्तु है। उसमें मनमानी बरताव नहीं चल सकता। जो मनुष्य संसार के साथ मनमानी करता है, वह इसे बिगाड़ता है, और जो इस पर बलात अधिकार करना चाहता है, वह इसे खोता है।

2. सामने की वस्तुएं क्षण में पीछे चली जाती हैं। नाक से श्वास गरम निकलता और तुरंत ठंडा हो जाता है। जो अभी बलवान है, क्षण में दुर्बल हो जाता है। जो अभी ऊपर है, क्षण में नीचे आ जाता है।

अतएव संत सभी अतियों से दूर रहते हैं। न वे तीव्र गति से आगे बढ़ना चाहते हैं, न अधिक मात्रा चाहते हैं और न ऊंचा होना चाहते हैं।

भाष्य—संसार को जीतकर अपनी मर्जी से उसे चलाना; मेरा अनुभव है, यह संभव नहीं है। संसार एक आध्यात्मिक वस्तु है, उसमें मनमर्जी संभव नहीं है। ग्रंथकार की यह बहुत गंभीर बात है, **संसार एक आध्यात्मिक वस्तु है।** यहां संसार का अर्थ है संसार में रहने वाले प्राणी, विशेषकर मनुष्य। आधिभौतिक और आध्यात्मिक दो प्रकार की वस्तुएं होती हैं। भूतों-जड़तत्त्वों-मिट्टी, पानी, आग, हवा के समुच्चय से बने पदार्थ भौतिक कहलाते हैं। इन्हीं को आधिभौतिक कहा जाता है। दूसरा क्षेत्र प्राणियों का है। प्राणियों के शरीर भी इन्हीं पृथ्वी आदि जड़-तत्त्वों से बने होते हैं, परंतु उनमें चेतन निवास करते हैं जो आत्मा कहलाते हैं; क्योंकि वे अपने आप का अपनत्व समझते हैं, अपनी रक्षा में सावधान रहते हैं, अपनी सूझ के अनुसार सदैव दुख से बचते और सुख पाने के प्रयत्न में रहते हैं। अतएव वे अपने लिए, आत्मा के लिए जागरूक रहते हैं, इसलिए प्राणियों को आध्यात्मिक कहा जाता है। 'अधि' कहते हैं—'आधार को' और 'आत्मिक' का अर्थ है—'आत्मा का', अर्थात जो आत्मा के आधार में रहता है वह आध्यात्मिक है। प्राणियों के सभी शरीर आत्मा के आधार में रहते हैं, अतएव प्राणी आध्यात्मिक हैं।

मनुष्य रुपये, पैसे, गहने, कपड़े, फर्नीचर आदि भौतिक-निर्जीव पदार्थों को अपने कब्जे में कुछ समय रख सकता है, परंतु एक छोटे बच्चे को, उस पर कब्जा करके नहीं रख सकता। क्योंकि वह आध्यात्मिक है। परंतु यदि रुपये-

पैसे आदि जड़-पदार्थ भी किसी दूसरे प्राणी के हैं या सामूहिक हैं, तो उन पर भी अपना एकाधिकार नहीं किया जा सकता।

कितने पति अपनी पत्नी को तथा पत्नी पति को अपने अधीन बनाकर उनको अपनी अंगुलियों पर नचाना चाहते हैं। इसका परिणाम उनके लिए बुरा होता है। हम निर्जीव पदार्थों के समान प्राणियों पर अपना अधिकार चाहते हैं और यह निश्चित है कि अपने को दुख में डालना है।

प्राणियों पर अपना अधिकार जमाकर उनके साथ मनमानी करना और उनको अपनी मनमर्जी से चलाने का दुराग्रह रखना घोर अविवेक है। संसार के निर्जीव पदार्थ भी केवल मेरे नहीं हैं। वे भी साझे के हैं। उनमें भी अन्य संबंधित प्राणियों का अधिकार है। अतएव निर्जीव पदार्थ भी मानो आध्यात्मिक ही हैं। वे भी अनेक आत्माओं से जुड़े हैं। अतएव संसार के प्राणी और पदार्थ आध्यात्मिक ही हैं, आत्माओं से संबंधित ही हैं। इसलिए उन पर अपनी मनमर्जी करने का हठ दुख का रास्ता है। याद रखें, हम जिन पर कब्जा करना चाहते हैं उनके कब्जे में हम स्वयं हो जाते हैं। इसके साथ कलह अलग से बढ़ता है।

रावण सबको वश में करना चाहा, तो परिवार सहित मारा गया। दुर्योधन सबकुछ को अपने वश में करना चाहा, तो उसका सबकुछ खो गया। पांडव उस पर विजय करके अपना अधिकार जमाना चाहे तो वे अवशेष जीवन रोते रहे और हिमालय में गलकर मरे। यादव-वंश सब पर अपना अधिकार जमाना चाहा तो आपसी कलह कर कट मरा। महान सिकंदर दुनिया को अधीन करना चाहा तो रास्ते में मारा गया और उसके मूल देश यूनान का पतन हुआ। चंगेज खां, नेपोलियन, हिटलर का क्या हुआ? अतएव सुख का रास्ता है स्वयं सुख-शांति से जीयो और दूसरों को सुख-शांति से जीने दो। परिवार तथा समाज में भी किसी पर कब्जा करने की चेष्टा न करो। किंतु सबको सम्मान देकर सबसे समता का व्यवहार करो।

जो भी इसमें मनमर्जी करता है, इसे नष्ट करता है। जो भी इसे पकड़कर रखना चाहता है, खोता है। गुरुजनों, मित्रों, सज्जनों और अपने विवेक की सम्मति दूर रखकर जो प्राणी-पदार्थों पर अधिकार जमाने और उनके साथ मनमानी करने का हठ करता है, वह उन्हें खराब करता है, बिगाड़ता है और अपना पतन करता है। जो पकड़कर रखना चाहता है, वह खोता है। सारी भौतिक उपलब्धियां तो खोती ही हैं, वह अपने आत्मा का सुख भी खोता है।

अभी चीजें आगे हैं, अभी पीछे हो गयीं। अभी गरम श्वास, अभी ठंडा श्वास। अभी उनमें शक्ति है, अभी कमजोर हो गयीं। अभी वे ऊंचाई पर हैं, अभी लड़खड़ा गयीं। संसार चक्र की तरह चलता है। चक्र ऊपर से नीचे जाता है और नीचे से ऊपर। यहां कुछ स्थिर नहीं है। जो वस्तुएं हमारे सामने

रहती हैं वे क्षण में पीछे हो जाती हैं। जो आज हमारी हैं वे कल दूसरों की हो जाती हैं। नाक से श्वास निकलता है तब गरम रहता है, परंतु निकलते ही ठंडा हो जाता है। बड़े बलवान लोग भी थोड़े समय में दुर्बल और हीन-दीन होकर बैठ जाते हैं। ऊंचे पद पर रहने वाले सड़क पर आ जाते हैं। बड़े-बड़े अभिमानी थोड़े दिनों में मुंह के बल गिरकर धूल चाटते हैं।

अतएव, संत सारे अति से दूर रहते हैं; अत्यंत तीव्र, आधिक्य और अधिक बड़ा होने से। संत भौतिक उपलब्धियों के लिए अत्यंत तीव्र होकर नहीं दौड़ते। यहां तक कि धर्म-प्रचार में भी वे तृष्णा नहीं रखते। वे यह सब सहज होने देते हैं। वे सहज प्राप्त वस्तुओं में संतोष रखते हैं, अधिक पाने की लालसा नहीं रखते। वे बड़ा बनने की चेष्टा नहीं रखते। इसलिए वे स्थिर शांति में जीते हैं। उनकी कभी पराजय नहीं होती। जो स्वयं सबसे पीछे और नीचे रहना चाहता है, जो कम-से-कम में निर्वाह करता है, वह सदैव संतुष्ट रहता है।